प्रकरण चार

"मैं आपकी सेवा कैसे करूँगा?"

मुझे पूरी आशा है कि आप अंग्रेजी के माध्यम से बहुत अच्छे प्रचारक हो सकते हैं, यदि आप भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं की अद्‌भुत छाप जन-सामान्य तथा दार्शनिकों और धर्मिष्ठों के मन में बैठाने के लिए मिशन की सेवा में लग जाएँ।

—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती द्वारा श्रील प्रभुपाद
को दिसम्बर १९३६ में लिखे गये एक पत्र से

सन् १९३२ ई. के अक्तूबर मास में भक्तिसिद्धान्त सरस्वती सैकड़ों शिष्यों और तीर्थयात्रियों का एक दल लेकर वृन्दावन के पवित्र स्थानों की एक मास की परिक्रमा पर निकले। वृन्दावन के निवासी और दर्शक वृन्दावन-क्षेत्र की परिक्रमा यमुना-नदी के किनारे-किनारे पुराने शुष्क मार्ग से करते हैं। वे उन स्थानों पर रुकते जाते हैं, जहाँ आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व वृन्दावन में विहार करते हुए श्रीकृष्ण ने लीलाएँ की थीं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की परिक्रमा में अभय सम्मिलित होना चाहते थे, किन्तु कार्य-वश वे वैसा नहीं कर सके। फिर भी तीर्थ-यात्रा के बीसवें दिन वे इलाहाबाद से चल पड़े, इस निश्चय के साथ कि वे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से फिर मिलेंगे और इस आशा से कि एक दिन के लिए ही सही, वे वृन्दावन के बाहर कोसी में परिक्रमा में सम्मिलित होंगे।

जो परिक्रमा श्रील भक्तिसिद्धान्त ने आयोजित की थी, वह वृन्दावन में आयोजित सबसे बड़ी परिक्रमाओं में से एक थी। इतने अधिक लोगों को परिक्रमा में सम्मिलित करके वे उसे सामूहिक प्रचार का एक साधन बना रहे थे। सन् १९१८ ई. में भी जब श्रील भक्तिसिद्धान्त ने अपना प्रचार-कार्य आरम्भ किया था, उनकी विशिष्ट देन प्रचार पर बल देना थी। उनके आगमन के पूर्व वैष्णव सामान्यतः बस्तियों से दूर रहते और पूजा-अर्चा वृन्दावन जैसे एकान्त स्थलों में करते। जब वे प्रचार के लिए यात्रा करते, तो भी वे दीन-

हीन भिक्षुकों का सरल तरीका अपनाते। भगवान् चैतन्य के काल में उनके गोस्वामी अनुयायी वृन्दावन में वृक्षों की छाया में रहते थे : एक रात एक वृक्ष की छाया में, अगली रात दूसरे वृक्ष की छाया में।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का उद्देश्य विश्व-व्यापी प्रचार था। वे जानते थे कि गोस्वामियों का त्याग पाश्चात्यों के लिए सम्भव नहीं था, इसलिए उन्होंने यह धारणा आरम्भ की, कि भक्त विशाल मन्दिर में भी रह सकते है। उन्होंने, एक सम्पन्न वैष्णव व्यवसायी से बड़ा अनुदान स्वीकार किया था और कलकत्ता के बागबाजार-क्षेत्र में सन् १९३० ई. में संगमरमर के एक बड़े मन्दिर का निर्माण कराया था। उसी वर्ष वे अपने बहुत से अनुयायियों के साथ उल्टडंग के किराए के छोटे मकान से अपने नये प्रभावशाली मुख्यालय में चले गये थे।

श्रील भक्तिसिद्धान्त यह प्रदर्शित कर रहे थे कि एक भक्त को अपनी इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने के लिए एक पैसा भी खर्च नहीं करना चाहिए, जबकि कृष्ण भगवान् की सेवा में वह लाखों रुपये खर्च कर सकता है। जबकि श्रील भक्तिसिद्धान्त के पूर्व वैष्णव, अंग्रेजों द्वारा लाए गये यांत्रिक उपकरणों से कोई सरोकार नहीं रखते थे, किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त, शास्त्र-ग्रंथों के आधार पर अधिक ऊँचे स्तर की चेतना का प्रदर्शन कर रहे थे। भगवान् चैतन्य के महान् शिष्य रूप गोस्वामी ने लिखा था, "भौतिक बन्धनों से पूर्णतया मुक्त होने का तात्पर्य यह नहीं है कि हर भौतिक बन्धन का त्याग कर दिया जाये, वरन् उसका तात्पर्य यह है कि हर वस्तु श्री भगवान् कृष्ण की सेवा में नियोजित की जाये। योग में इसे ही पूर्ण त्याग समझा जाता है।" यदि हर वस्तु भगवान् की ऊर्जा है, तो किसी वस्तु का त्याग क्यों? यदि भगवान् अच्छे हैं, तो उनकी ऊर्जा भी अच्छी है; भौतिक वस्तुओं का उपयोग अपने इन्द्रिय-सुख के लिए नहीं करना चाहिए; किन्तु उनका उपयोग भगवान् कृष्ण की सेवा के लिए किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। इसलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त आधुनिकतम छापेखानों का इस्तेमाल करना चाहते थे। वे सांसारिक लोगों को कृष्ण-कथा सुनने के लिए शान-शौकत से बने मन्दिरों में आमंत्रित करना चाहते थे। और प्रचार-कार्य पर जाने वाले भक्तों को सुन्दर से सुन्दर वाहनों में जाने से हिचकना नहीं चाहिए; उन्हें सिले कपड़े पहनना चाहिए और भौतिक सुख-सुविधाओं के बीच रहना चाहिए।

इसी भावना से उन्होंने बागबाजार के भवन का निर्माण कराया था और वहाँ एक आस्तिक-प्रदर्शनी आयोजित की थी, जिसमें बारीकी से निर्मित चित्रित और सुसज्जित मिट्टी की गुड़ियों की झाँकियाँ दिखाने की व्यवस्था की गई थी। ये गुड़ियाँ बंगाल की परम्परागत कला का एक रूप है, किन्तु वैष्णव-दर्शन और श्रीकृष्ण की लीलाओं को व्यापक ढंग से प्रदर्शित करने वाली लगभग एक सौ गुड़ियों का एक साथ इस प्रकार

रंगमंच पर एकत्र किया जाना पहले कभी नहीं देखा गया था। आस्तिक प्रदर्शनी से चारों ओर धूम मच गई और हजारों लोग उसे प्रतिदिन देखने आने लगे।

उसी वर्ष श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती अपने लगभग चालीस शिष्यों के साथ भारत की परिक्रमा पर निकले। इस यात्रा में श्रील भक्तिसिद्धान्त के कई सार्वजनिक भाषण हुए और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से उनकी भेंटें हुईं। १९३२ ई. तक भारत के विभिन्न भागों में उन्होंने तीन प्रेस स्थापित कर दिए थे, जहाँ से विभिन्न भारतीय उपभाषाओं में छह पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थीं।

कलकत्ता में एक राजनेता ने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से पूछा, "*नदिया प्रकाश* को आप एक दैनिक पत्र के रूप में कैसे निकालते हैं?" भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने उत्तर दिया कि यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि केवल कलकत्ता नगर से लगभग आधे दर्जन सामान्य दैनिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं, यद्यपि यह भारत के सभी नगरों में केवल एक नगर है, भारत पृथ्वी पर के सभी राष्ट्रों में केवल एक राष्ट्र है, पृथ्वी ब्रह्माण्ड के अनेक ग्रहों में केवल एक बहुत छोटा-सा ग्रह है, यह ब्रह्माण्ड उन ब्रह्माण्डों में केवल एक है जिनकी संख्या इतनी अधिक है कि एक एक ब्रह्माण्ड की वही स्थिति है, जो सरसों के एक बड़े बोरे में एकाकी सरसों के बीज की होती है, और यह सारी भौतिक सृष्टि भगवान् की सृष्टि का केवल एक क्षुद्र अंश है। *नदिया प्रकाश* में कलकत्ता या पृथ्वी पर के नहीं, वरन् अनन्त आध्यात्मिक आकाश के समाचार प्रकाशित होते थे, जो समस्त भौतिक जगतों के सम्मिलित आकार से भी बड़ा है। इसलिए यदि सीमित भौतिक जगत के समाचार देने वाले कलकत्ता के पत्र दैनिक हो सकते थे, तो क्या आश्चर्य जो *नदिया प्रकाश* दैनिक छपता है। वास्तव में यदि अभिरुचि रखने वाले पाठकों का अभाव न हो, तो आध्यात्मिक संसार विषयक समाचार-पत्र प्रतिक्षण छप सकता है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त के प्रकाशनों में एक प्रकाशन अंग्रेजी में था—*हारमोनिस्ट;* और १९३२ ई. की वृन्दावन परिक्रमा का विज्ञापन इसमें प्रकाशित हुआ :

श्री व्रज-मण्डल की परिक्रमा

मध्व गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के आध्यात्मिक गुरु कृष्णकृपामूर्ति परमहंस श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का अनुगमन करके प्रसन्नतापूर्वक बिना जाति, धर्म, रंग, अवस्था और लिंग-भेद के, प्रत्येक राष्ट्र के सभी व्यक्तियों को श्रीकृष्णचैतन्य, जिन्होंने १५१४ ई. शीतऋतु में

श्री व्रजमण्डल की परिक्रमा करने की लीला प्रदर्शित की थी, उनके चरण-चिह्नों पर चलते हुए पवित्र व्रजमण्डल की भक्तिपूर्वक परिक्रमा के उत्सव में सहयोग के लिए आमंत्रित करते हैं।

अभय ने जब इलाहाबाद गौड़ीय मठ के सदस्यों से परिक्रमा के विषय में सुना था, उस समय वे अपनी स्थानीय प्रयाग फार्मेसी के धंधे में और नये ग्राहक बनाने के लिए यात्राओं में पूरी तरह व्यस्त थे। लेकिन उन्होंने हिसाब लगाकर देख लिया था कि वे किस प्रकार कम से कम एक या दो दिन के लिए परिक्रमा में सम्मिलित हो सकते हैं और वे एक बार फिर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का दर्शन प्राप्त करने के लिए दृढ़-निश्चयी हो गये थे।

श्रील प्रभुपाद : *परिक्रमा के समय मैं दीक्षित नहीं हुआ था, लेकिन मेरे मन में गौड़ीय मठ के लोगों के सम्बन्ध में भूरि-भूरि प्रशंसा के भाव थे। मेरे प्रति वे बहुत दयालु थे। इसलिए मैं सोचता, "ये लोग परिक्रमा में क्या कर रहे है ? चलो चलें।" अतएव मैं कोसी में उनसे जा मिला।*

परिक्रमा-दल बड़े कुशल आयोजन के साथ यात्रा कर रहा था। एक अग्रिम दल सभी बिस्तर और खेमे आदि लेकर अगले दिन के निवास-स्थान पर पहले ही पहुँच जाता था और वहाँ खेमे गाड़कर भोजनालय की व्यवस्था कर देता था। इसी दौरान मुख्य दल भगवान् चैतन्य महाप्रभु का श्रीविग्रह लिए हुए भजन-कीर्तन करने वालों के साथ कृष्ण-लीला के स्थलों का दर्शन करता हुआ शाम तक डेरे पर पहुँच जाता था।

कैम्प अर्धवृत्ताकार रूप में बनाए जाते थे और वे खंडो में विभाजित होते थे। यात्रियों को अलग-अलग खंड रात-भर के लिए निर्धारित कर दिए जाते थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त और भगवान् चैतन्य के श्रीविग्रह के आवास मध्य में होते थे और निकट ही संन्यासियों के कैम्प रहते थे। स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग कैम्प होते थे—पति-पत्नी एक साथ नहीं रहते थे। स्वेच्छापूर्ण रक्षक का कार्य करने वालों का भी एक दल था, जो रात-भर घूमकर पूरे क्षेत्र की रखवाली करता था। रात को पूरा शिविर, जो सैकड़ों कैम्पों से बना होता था, गैस की रोशनी और कैम्प फायर के प्रकाश में जगमगाता हुआ एक छोटा कस्बा लगता था। उसकी व्यवस्था से आश्चर्य-अभिभूत होकर स्थानीय लोग उसे देखने आते थे। संध्या-समय श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का प्रवचन सुनने के लिए सभी एकत्र होते थे।

तीर्थयात्री हर दिन बड़े सवेरे उठते और मिलकर हरे-कृष्ण का जप करते थे। तब भगवान् चैतन्य महाप्रभु का श्रीविग्रह लेकर वे जुलूस में चल पड़ते थे—पहले कीर्तन करने वाले, उसके बाद पुलिस बैंड, तब अग्रगामी घोड़ा, फिर पताकाधारी, और बाद में सभी

तीर्थयात्री। वे पवित्र स्थानों पर जाते थे: श्रीकृष्ण भगवान् की जन्मभूमि, उस स्थान पर जहाँ भगवान् कृष्ण ने कंस का वध किया था, आदि-केशव मन्दिर, राधा-कुंड, श्याम-कुंड और बहुत से अन्य स्थान।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती बड़ी सफलता के साथ अपनी बहुजन-संकुल तीर्थयात्रा पर आगे बढ़ रहे थे कि उन्हें गहरे विरोध का सामना करना पड़ा। वृन्दावन में स्थानीय मन्दिरों के स्वामियों ने इस बात पर आपत्ति की कि श्रील भक्तिसिद्धान्त उन भक्तों को यज्ञोपवीत धारण करा रहे हैं, जो ब्राह्मण परिवारों में पैदा नहीं हुए थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त अपने लेखों और भाषणों में वैदिक शास्त्रों से बारम्बार यह सिद्ध कर चुके थे कि कोई मनुष्य जन्म से नहीं, वरन् अपने गुणों से ब्राह्मण होता है। प्राय: वे सनातन गोस्वामी के *हरि-भक्ति-विलास* से एक श्लोक उद्धृत करते, जिसका आशय यह था कि जैसे कोई हीन धातु पारा मिलाने से सोना बन जाती है, उसी प्रकार एक सामान्य व्यक्ति प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु से दीक्षा प्राप्त कर लेने पर ब्राह्मण हो जाता है। वे *श्रीमद्भागवत्* से भी प्राय: एक श्लोक सुनाया करते, जिसमें महान् ऋषि नारद राजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि यदि कोई शूद्र-कुल में जन्म लेकर ब्राह्मण की तरह आचरण करता है, तो उसे ब्राह्मण स्वीकार करना पड़ेगा और यदि कोई ब्राह्मण-कुल में पैदा होता है, लेकिन शूद्र की भाँति आचरण करता है, तो उसे शूद्र मानना होगा। चूँकि कलियुग में आध्यात्मिक उन्नति का प्रधान उपाय भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन है, इसलिए जो कोई भी हरे कृष्ण का कीर्तन करता है, उसे साधु पुरुष मानना चाहिए।

जब स्थानीय पंडित श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के पास वाद-विवाद के लिए आये, तो उन्होंने उनकी उस उदारता पर आपत्ति उठाई, जो वह छोटी जातियों के व्यक्तियों को दीक्षा, यज्ञोपवीत और संन्यासी के वस्त्र देने में दिखाते थे। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के विद्वत्तापूर्ण और ओज-भरे तर्क के सामने पंडित-वर्ग वाद-विवाद में सन्तुष्ट प्रतीत हुआ, किन्तु जब परिक्रमा-दल वृन्दावन के सात मुख्य मन्दिरों पर पहुँचा, जिनका निर्माण भगवान् चैतन्य के निकट अनुयायियों ने कराया था, तो तीर्थयात्रियों ने देखा कि मन्दिरों के द्वार बन्द हैं। वृन्दावन के दुकानदारों ने भी अपने धंधे बन्द कर दिए थे और कुछ लोगों ने आगे बढ़ते तीर्थयात्रियों पर पत्थर भी फेंके। किन्तु परिक्रमा-दल श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के नेतृत्व में इस विरोध के बावजूद उत्साह के साथ आगे बढ़ता गया और २८ अक्तूबर को वह दल कोसी पहुँच गया, जहाँ श्रीकृष्ण के पिता नन्द का कोषागार था।

• • •

अभय इलाहाबाद से मथुरा ट्रेन से गये और वहाँ से रिक्शा द्वारा कोसी पहुँचे। रास्ते में

देहात का दृश्य अभय को बहुत मोहक लगा; कारखानों और बड़ी इमारतों के स्थान पर चारों ओर जंगल फैले थे और मुख्य पक्की सड़क के अतिरिक्त, जिस पर वे यात्रा कर रहे थे, सभी मार्ग कच्चे, धूलि-भरे थे या नर्म बालु की पगडंडिया थीं। वैष्णव होने के नाते अभय के मन में ऐसी भावनाओं का उदय हुआ, जो एक साधारण व्यक्ति के मन में नहीं उठ सकती थीं। कभी-कभी उन्हें मोर दिखाई पड़ जाते जिनके रंग-बिरंगे पंख वृन्दावन और श्रीकृष्ण के वैभव की घोषणा करते प्रतीत होते। भाँति-भाँति के पक्षी और वायुमंडल में गूँजने वाली उनकी रोचक बोलियाँ और उनके गीत अभक्तों को भी पसन्द आये बिना न रहते। कभी-कभी कोई पेड़ रात्रि-विश्राम के पूर्व गोधूलि-वेला में चहचहाने वाली गौरैया-चिड़ियों के उन्माद-भरे कलरवों से पूरित हो जाता। वृन्दावन के विशेष महत्त्व को न जानने वाले के मन के लिए भी देहात का वह सहज दृश्य मुग्धकारी था, जहाँ लोग खुले में गाय के गोबर से बने कंडों से शाम का भोजन बनाने के लिए आग जलाते थे। सुलगते कंडों और पृथ्वी की मोहक प्राकृतिक सुगंध से मिली-जुली अजीब गंध उठ रही थी। कितने ही पुराने, गाँठों से भरे वृक्ष खड़े थे, रंग-बिरंगे फूलों की पंक्तियाँ दूर तक चली गई थीं। चमकते नीले-लाल रंग की झाड़ियाँ थीं; कोमल, श्वेत खिले हुए पारिजात पुष्पों से लदे वृक्ष थे, बड़े-बड़े पीले रंग के कदम्ब के पुष्प थे, जो वृन्दावन के बाहर शायद ही कहीं दिखाई देते हों।

सड़क पर घोड़ा-गाड़ियों की चहल-पहल थी। कार्तिक का महीना—अक्टूबर-नवम्बर साल के उन महीनों में से एक था, जब वृन्दावन के लिए तीर्थ-यात्रियों की भीड़ उमड़ती थी। एक घोड़े वाली टांगा गाड़ी में बड़े-बड़े परिवार लदे थे—कुछ तो सैकड़ों मीलों से आ रहे थे। तीर्थ-यात्रियों के बड़े समूह, जो गाँवों के दलों के अनुसार बने थे, साथ-साथ चल रहे थे। स्त्रियाँ चमकदार रंगीन साड़ियों में थीं। गेहुएँ रंग के स्त्री-पुरुष कभी-कभी भजन गाते जा रहे थे। उनके पास सामान सादा और थोड़ा-सा था। वे सब हजारों मन्दिरों के नगर वृन्दावन की ओर बढ़ रहे थे। अभय जैसे व्यवसायी भी थे, जो ढंग से पहने-ओढ़े थे और नागरिक लगते थे और हो सकता है एक-दो दिन के लिए वहाँ जा रहे हों। यात्रियों में अधिकतर का उद्देश्य, कम से कम ऊपर से, धार्मिक लगता था यथा मन्दिर में श्रीकृष्ण का दर्शन, पवित्र यमुना नदी में स्नान और उन स्थानों को देखना, जहाँ भगवान् कृष्ण ने अपनी लीलाएँ की थीं, जैसे गोवर्धन पर्वत का उठाना, केशी राक्षसी का वध या संध्या-समय गोपियों के साथ नृत्य।

अभय वृन्दावन के वातावरण के प्रति संवेदनशील थे और वे सड़क पर की गति-विधियों को देखते जा रहे थे। लेकिन उससे भी बढ़कर उनकी यात्रा की सफलता की आशा जो उनके मन में पल रही थी, वह भी लम्बे व्यवधान के बाद उन साधु-पुरुष से

मिलना जिनके बारे में वे हमेशा मन में सोचा करते थे। वे साधु-पुरुष थे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती, जिनसे कलकत्ता में उनकी वार्ता हुई थी और जिन्होंने कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वाले भगवान् चैतन्य के मिशन के प्रति उनके मन में विश्वास जगाया था। अभय उनसे एक बार फिर मिलेंगे—यही था वह उद्देश्य जो उनके मन में भरा था।

लालटेन के प्रकाश से आलोकित गौड़ीय मठ के शिविर में पहुँचने पर पंजीकरण के बाद उन्हें परिक्रमा-ग्राम में सम्मिलित होने की अनुमति मिल गई। गृहस्थ लोगों का एक टेंट उन्हें निर्धारित कर दिया गया और उन्हें प्रसाद दिया गया। वहाँ के लोगों का व्यवहार मित्रवत् और उत्साह-भरा था। अभय कलकत्ता और इलाहाबाद के मठों के सदस्यों को अपने कार्य-कलापों के बारे में बताने लगे। तब वहाँ सभी एकत्र हो गये—एक संन्यासी एक सूचना उद्घोषित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि आज शाम को निकट के मन्दिर में शेषशायी विष्णु भगवान् के दर्शनों के लिए जाने का निर्धारित कार्यक्रम है। कुछ तीर्थ-यात्रियों ने हर्ष ध्वनि की, "हरि बोल, हरे कृष्ण।" संन्यासी ने यह भी सूचना दी कि कृष्णकृपामूर्ति श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, उस शाम को अन्तिम बार प्रवचन करेंगे और अगले दिन वे परिक्रमा दल से चले जायँगे। अत: विकल्प था कि या तो कोई परिक्रमा में सम्मिलित हो या उनके प्रवचन के लिए रुके।

श्रील प्रभुपाद : *इस तरह मैं कोसी में उनसे मिला, और केशव महाराज ने मुझे बताया कि श्रील भक्तिसिद्धान्त कल सवेरे मथुरा चले जायँगे और आज शाम को वे हरिकथा पर प्रवचन करेंगे। जो कोई चाहता हो, उसके लिए रुक सकता है। अन्यथा वह शेषशायी विष्णु के दर्शनों को जा सकता है। जहाँ तक मुझे स्मरण है, उस समय दस या बारह लोग प्रवचन के लिए रुके। उनमें श्रीधर महाराज भी थे। और मुझे यही बुद्धिमत्तापूर्ण लगा। "उस शेषशायी मन्दिर में मैं क्या देख सकता हूँ? श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती क्या कहते है, इसे सुनना चाहिए। मैं उसे ही सुनूँगा।"*

जब अभय पहुँचे तो श्रील भक्तिसिद्धान्त बोलना आरम्भ कर चुके थे। वे सीधे तनकर बैठे थे। उनके कंधो पर शाल पड़ा था। वे एक पेशेवर वक्ता की तरह नहीं बोल रहे थे, जो पूर्व-निश्चित योजनानुसार भाषण देता है; वरन् वे अपने कमरे में थोड़े-से लोगों को सम्बोधित कर रहे थे। अन्ततः अभय उनके सामने फिर उपस्थित थे। अभय कृष्ण-कथा में सराबोर उस अनुपम पुरुष को देखकर और बिना किसी रोक-टोक के बोलते हुए सुनकर, विस्मय से अभिभूत हो गये। गहरे, मंद, भावविभोर स्वर में वे अपने गहन ज्ञान का अबाध आख्यान कर रहे थे। अभय बैठ गये और तन्मय होकर सुनने लगे।

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती नियमतः सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन पर बोलते आ रहे

थे। सम्बन्ध वैध भक्ति की वह अवस्था है, जिसमें भगवान् की चेतना जागृत होती है; अभिधेय भगवान् के प्रति प्रेमपूर्ण सेवा करना है; प्रयोजन अन्तिम लक्ष्य है—भगवान् के प्रति विशुद्ध प्रेम। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि उनकी व्याख्या भगवान् कृष्ण ने जो कुछ मूलतः कहा था और जो गुरु-शिष्य परम्परा से चलता आया है, उसका केवल पुनः कथन है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की विशिष्ट व्याख्या, जो अधिकांश बंगाली में और कभी-कभी अंग्रेजी में थी, शास्त्रों के अनेक संस्कृत उद्धरणों से भरी थी और अत्यन्त गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण थी। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कहा, "कृष्ण भगवान् समस्त सृष्टि के, सृष्टि के परे वैकुण्ठ के, इन्द्रियातीत लोक के एकाकी परम ईश्वर हैं। इसलिए उनके आह्लाद में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न कर सकता।"

एक घंटा बीत गया, दो घंटे बीत गए...। श्रील भक्तिसिद्धान्त के कमरे में इकट्ठे थोड़े से श्रोताओं की संख्या धीरे-धीरे घटती गई। कुछ संन्यासी यह कहकर चले गये कि उन्हें परिक्रमा-शिविर की व्यवस्था देखनी है। केवल थोड़े से घनिष्ठ प्रमुख नेता रह गये। बाहरी लोगों में से केवल अभय रह गये थे। निस्सन्देह, वे एक भक्त थे और बाहरी नहीं थे और चूँकि संन्यासी नहीं थे, अतः वे यात्रा सम्बन्धी कोई कर्तव्य नहीं सँभाल रहे थे, दीक्षा-प्राप्त नहीं थे और परिक्रमा-दल के साथ यात्रा नहीं कर रहे थे, वरन् केवल एक दिन के लिए वहाँ आये थे—इस अर्थ में वे बाहरी थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त जो दर्शन समझा रहे थे, वह उन सभी के लिए था जो ध्यानपूर्वक उसे सुनें। और अभय वही कर रहे थे।

वे विस्मयपूर्वक सुन रहे थे। कभी-कभी उनकी समझ में बात न आती, फिर भी वे विनम्रता के साथ शब्दों का अवगाहन करते हुए ध्यानपूर्वक सुनते जा रहे थे। उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था कि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती आध्यात्मिक जगत का सीधा दृश्य उनके सामने उद्घाटित कर रहे हैं, ठीक वैसे ही, जैसे कोई व्यक्ति दरवाजा खोलकर या पर्दा हटाकर कोई वस्तु प्रकट करता है। वे सत्य का उद्घाटन कर रहे थे और वह सत्य था—श्री राधा-कृष्ण के चरणकमलों की प्रेममयी सेवा भक्ति; राधा-कृष्ण स्वयं परम पूज्य श्री भगवान् हैं। वे कितने अधिकार के साथ बोल रहे थे! उनमें कितना विश्वास और साहस था!

अभय ने उन्हें इसी संभ्रम और अविचल ध्यान से सुना। निस्सन्देह, हर वैष्णव श्रीकृष्ण को अपना पूज्य भगवान् मानता था, पर इस महान् गुरु ने कितनी प्रामाणिकता और कैसे गूढ़ तर्क और विश्वास के साथ वैष्णवों के मत को स्थापित किया! कई घंटों के बाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने बोलना बन्द किया। अभय बिना रुके सुनते जाने को तत्पर लगते थे, फिर भी उनके मन में कोई परेशान करने वाली शंका या जिज्ञासा सामने रखने को न थी। वे और अधिक सुनते जाना चाहते थे। जब भक्तिसिद्धान्त जाने लगे, अभय ने

सम्मान प्रकट करने के लिए सिर झुकाया। तब घनिष्ठ संन्यासियों के शिविरों को छोड़कर वे बाहरी शिविरों में गये। उनका मन आध्यात्मिक गुरु के वचनों में डूबा था।

अब उनके सम्बन्ध अधिक ठोस प्रतीत हुए। वे उस मूल धारणा को अपने मन में अब भी सँजोए हुए थे, जो साधु स्वभाव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कलकत्ता में छत पर उन से बातचीत करके उनमें पैदा की थी। वह धारणा जो इलाहाबाद में उन्हें वर्षों बल देती रही, आज रात और अधिक समृद्ध और सजीव बन गई थी। उनके आध्यात्मिक गुरु और उनके शब्दों से उत्पन्न प्रभाव अभय के लिए वैसे ही सच थे, जैसे वृन्दावन के ऊपर आसमान के तारे या चाँद। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के वचनों को सुनने से उत्पन्न धारणा सत्य बनकर उनमें व्याप्त हो रही थी और अन्य सभी सत्य श्रील गुरुदेव के निरपेक्ष सत्य के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो रहे थे, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य के इर्द-गिर्द सभी ग्रह घूमते हैं।

दूसरे दिन अभय अन्य लोगों के साथ सूर्योदय से एक घंटा से अधिक पहले उठ गये। उन्होंने स्नान किया और सबके साथ मंत्रोच्चारण किया। उसके बाद तेजस्वी शरीर और लम्बे कद वाले श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती सादे गेरुए कपड़े पहनकर, एक कार की पिछली सीट में बैठे और शिविर से चले गये। विचारमग्न और गम्भीर मुद्रा से वे पीछे मुड़कर देखते रहे और अपने अनुयायियों के प्रेमपूर्ण विदाई-संकेतों को हाथ हिलाकर स्वीकार करते रहे। उन अनुयायियों में अभय भी थे।

• • •

लगभग एक महीने बाद अभय को आशा होने लगी कि श्रील भक्तिसिद्धान्त से उनकी भेंट फिर शीघ्र ही होगी—इस बार इलाहाबाद में। अभय वृन्दावन से लौटकर अपनी प्रयाग फार्मेसी के कार्य में जुटे ही थे कि स्थानीय गौड़ीय मठ के भक्तों ने उन्हें यह एक अच्छी खबर सुनाई। उन्होंने श्री रूप गौड़ीय मठ के भवन के निर्माण के लिए भूमि प्राप्त कर ली थी और धन संग्रह कर लिया था और श्रील भक्तिसिद्धान्त २१ नवम्बर को होने वाले शिलान्यास-समारोह की अध्यक्षता करने आ रहे थे। संयुक्त प्रांत के गवर्नर सर विलियम मालकम हेली सम्मानित अतिथि होंगे और श्रील भक्तिसिद्धान्त की उपस्थिति में एक भव्य समारोह में वे मठ का शिलान्यास करेंगे। जब अभय को ज्ञात हुआ कि एक दीक्षा-समारोह भी होगा, तो उन्होंने जानना चाहा कि क्या वे भी दीक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मठ के अध्यक्ष अतुलानन्द ने अभय को विश्वस्त किया कि वे उनका परिचय श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से कराएँगे।

घर पर अभय ने दीक्षा लेने की योजना के बारे में अपनी पत्नी से बात की। उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन वे स्वयं दीक्षा लेना नहीं चाहती थीं। वे पहले से ही घर में

श्रीविग्रह की पूजा करते थे और उनको नैवेद्य चढ़ाते थे। ईश्वर में उनका विश्वास था और वे शान्तिपूर्वक रह रहे थे।

लेकिन अभय के लिए यह काफी नहीं था। यद्यपि वे अपनी पत्नी को विवश नहीं करना चाहते थे, लेकिन वे इतना जानते थे कि स्वयं उन्हें एक सच्चे भक्त से दीक्षा लेनी है। पापकर्म से बचना, धार्मिक जीवन बिताना—ये चीजें आवश्यक थीं और अच्छी थीं, लेकिन केवल इनसे ही जीवन आध्यात्मिक नहीं बनता और न इतने से आत्मा की भूख शान्त हो सकती है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य और आत्मा की एकमात्र आवश्यकता श्रीकृष्ण भगवान् का प्रेम है। उस प्रेम का निवेश उनके पिता द्वारा उनमें हो चुका था और अब उन्हें अगला कदम उठाना था। उनके पिता को उन्हें ऐसा करते देखने में प्रसन्नता होती।

उन्होंने जो कुछ अपने पिता से सीखा था, उसका सुदृढ़ीकरण अब एक ऐसे व्यक्ति से हो रहा था, जो संसार के सभी पतित आत्माओं को भगवान् के दिव्य प्रेम तक पहुँचाने में समर्थ थे। अभय जानते थे कि उन्हें आगे बढ़ना चाहिए और अपने आध्यात्मिक गुरु की शिक्षाओं की पूर्ण रूप से शरण लेनी चाहिए और धर्मशास्त्र कहते हैं, "परम सत्य को जानने के इच्छुक व्यक्ति को किसी आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाना चाहिए, ऐसे आध्यात्मिक गुरु की, जो गुरु-परम्परा में हो और जो कृष्णभावनामृत में अविचल बन चुका हो।" भगवान् चैतन्य ने भी, जो स्वयं कृष्ण थे, आध्यात्मिक गुरु को स्वीकार किया था, और दीक्षा के बाद ही उन्होंने कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए परम आह्लादजनक कृष्ण-प्रेम के लक्षणों को प्रकट किया था।

जहाँ तक औपचारिक दीक्षा का प्रश्न है, वह उन्होंने बारह वर्ष की अवस्था में ही परिवार के पुरोहित से प्राप्त कर ली थी। अभय ने उसे गम्भीरता से नहीं लिया था। वह एक धार्मिक औपचारिकता थी। किन्तु गुरु केवल अस्थायी औपचारिक पुरोहित नहीं होते, इसलिए अभय ने इस मान्यता को अस्वीकार किया कि उन्होंने पहले ही गुरु पा लिया था। अपने पारिवारिक पुरोहित से उन्हें भक्ति की शिक्षा नहीं मिली थी और न ही उन्होंने गुरु-परम्परा के माध्यम से उनको कृष्ण से सम्बद्ध किया था। पर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती द्वारा दीक्षित होकर वे कृष्ण से सम्बद्ध हो जायँगे। भक्तिसिद्धान्त, गौरकिशोर बाबाजी के शिष्य, भक्तिविनोद ठाकुर के पुत्र थे और भगवान् चैतन्य की गुरु-परम्परा में बारहवें गुरु थे। वे अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वैदिक विद्वान थे, और वैष्णव धर्म के ऐसे ज्ञाता थे, जो भगवद्धाम लौटने का मार्ग-दर्शन कर सकते थे। अपने पूर्वगामियों द्वारा वे अधिकृत थे कि सांसारिक दुखों की ओषधि के रूप में वे हर एक में कृष्णभावनामृत जागृत करके सर्वोच्च कल्याण के लिए कार्य करें। अभय को ऐसा अनुभव होता था कि वे भक्तिसिद्धान्त को

अपना आध्यात्मिक गुरु स्वीकार कर चुके थे और प्रथम मिलन के दिन ही उन्हें उनके आदेश प्राप्त हो चुके थे। अब यदि भक्तिसिद्धान्त उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लेते हैं, तो दोनों के बीच सम्बन्ध की पुष्टि हो जायेगी।

वृन्दावन में अभय द्वारा उनके दर्शन करने और भाषण सुनने के बाद कितनी शीघ्र उनका आगमन हो रहा है! अपने प्रतिनिधि के माध्यम से कृष्ण भगवान् की कार्यप्रणाली यही थी। इलाहाबाद में जहाँ अभय का परिवार था और कारोबार था, उनके आध्यात्मिक गुरु के आगमन से ऐसा लगता था, मानो वे उन्हें आध्यात्मिक जीवन में और अधिक खींचने के लिए ऐसा कर रहे हैं। बिना किसी प्रयास के श्रील भक्तिसिद्धान्त के साथ उनका सम्बन्ध गहरा होता जा रहा था। अब भक्तिसिद्धान्त उनके पास मानो किसी उच्चतर सत्ता के आयोजन के फलस्वरूप आ रहे थे।

• • •

समारोह के दिन भक्तिसिद्धान्त सरस्वती अपने शिष्यों से साउथ मलाका स्ट्रीट-स्थित इलाहाबाद गौड़ीय मठ में मिले। जब वे हरि-कथा पर बोल रहे थे और प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे, तब अतुलानन्द ब्रह्मचारी ने उसी अवसर पर दीक्षा के लिए बहुत से प्रत्याथियों को, जिनमें अभय भी थे, उनके सामने प्रस्तुत किया। इलाहाबाद के भक्तों को श्रीमान् दे पर गर्व था। वे हर दिन संध्या-समय मठ में आते और भजन गाते-गवाते, उपदेश सुनते सुनाते और प्रायः सम्मानित अतिथियों को वहाँ ले आते। उन्होंने धन दिया था और व्यवसायी सहयोगियों से भी दिलाया था। अभय हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से श्रील भक्तिसिद्धान्त की ओर देखने लगे। वे और श्रील भक्तिसिद्धान्त अब आमने-सामने थे, और श्रील भक्तिसिद्धान्त ने उन्हें पहचान लिया था और उन्हें देखकर वे स्पष्ट रूप से बहुत प्रसन्न थे। वे उन्हें पहले से जानते थे। अभय से दृष्टि-विनिमय करते हुए उन्होंने कहा, "हाँ, उसे मेरा प्रवचन सुनना पसन्द है, वह उठकर चला नहीं जाता। मैंने देखा है। मैं उसे अपना शिष्य स्वीकार करूँगा।"

वह क्षण, वे शब्द जब अभय के अस्तित्व में समा रहे थे, अभय भावविभोर हो गये। अतुलानन्द सानन्द चकित थे कि उनके गुरुदेव ने श्रीमान् दे को पहले ही स्वीकार कर लिया था। कमरे में बैठे अन्य शिष्यों को भी प्रसन्नता हुई कि श्रील भक्तिसिद्धान्त ने श्रीमान् दे को एक अच्छे श्रोता के रूप में तत्काल स्वीकार कर लिया था। कुछ को आश्चर्य हुआ कि भक्तिसिद्धान्त ने उस युवा ओषधि-विक्रेता का यह मूल्यांकन कब और कैसे कर लिया था।

दीक्षा-समारोह में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती व्यास-आसन पर विराजमान थे और

कमरा अतिथियों और गौड़ीय मठ के सदस्यों से भरा था। दीक्षा ग्रहण करने वाले एक छोटी वेदी के चारों ओर बैठे थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के एक संन्यासी शिष्य ने उस वेदी पर अग्नि प्रज्ज्वलित की और वह उसमें अन्न और फलों की आहुति देने लगा। अन्य सभी लोग शुद्धि-मंत्रों का पाठ करने लगे। अभय के भाई और उनकी बहिन वहाँ उपस्थित थे, किन्तु उनकी पत्नी नहीं थीं।

गुरुदेव की उपस्थिति में अभय आह्लादित थे। अपने आध्यात्मिक गुरु के ये शब्द कि, "हाँ, उसे मेरे प्रवचन अच्छे लगते हैं।" और उनकी पहचान भरी दृष्टि, दोनों अभय के मन पर अंकित हो गये थे। उन्होंने ठान लिया कि अपने आध्यात्मिक गुरु के प्रवचनों को वे उसी प्रकार ध्यान से सुनते रहेंगे और उन्हें प्रसन्न रखेंगे। उन्होंने सोचा, "इस प्रकार मैं अच्छा बोलने लगूँगा।" वैदिक साहित्य में भक्ति की नौ विधियाँ बताई गई हैं; पहली विधि है *श्रवणम्*, दूसरी है *कीर्तनम्।* कोसी में धैयपूर्वक बैठकर और कृष्ण-कथा सुनकर उन्होंने कृष्ण के प्रतिनिधि को प्रसन्न कर लिया था और जब कृष्ण के प्रतिनिधि प्रसन्न हैं, तो कृष्ण प्रसन्न हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने मठ को धन देने के लिए उनकी प्रशंसा नहीं की; न उन्होंने उनको परिवार और धंधा छोड़कर अपने साथ यात्रा करने की सलाह दी, न ही व्रत और उपवास से शरीर गलाने वाले योगियों की भाँति कठोर जीवन व्यतीत करने के लिए उन्होंने कहा। लेकिन उन्होंने कहा कि "वह मुझे सुनना पसन्द करता है, मैंने उसे लक्षित कर लिया है।" अभय के ध्यान में बार-बार यह बात आती रही और जब उनके आध्यात्मिक गुरु दीक्षा दे रहे थे, वे ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

अन्त में, भक्तिसिद्धान्त ने पुकारा कि अभय आगे आयें और माला स्वीकार करके हरिनाम की दीक्षा ग्रहण करें। साष्टांग प्रणाम करने के बाद अभय ने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाया और अपने आध्यात्मिक गुरु से जप-माला स्वीकार की। उसी समय उन्होंने ब्राह्मण का पवित्र यज्ञोपवीत भी स्वीकार किया, जिसका अर्थ था दूसरी दीक्षा। सामान्यतः श्रील भक्तिसिद्धान्त पहली दीक्षा हरिनाम देते थे और कुछ समय बाद ही, जब वे शिष्य की उन्नति से सन्तुष्ट हो जाते थे, तब दूसरी दीक्षा देते थे। लेकिन अभय को उन्होंने दोनो दीक्षाएँ एक साथ दे दीं। अब अभय पूर्ण शिष्य, ब्राह्मण, बन गये थे। अब वे यज्ञ कर सकते थे, जैसे दीक्षा के लिए अग्नि-यज्ञ; वे मन्दिर में श्रीविग्रह की पूजा कर सकते थे और प्रवचन की भी उनसे आशा की जा सकती थी। श्रील भक्तिसिद्धान्त ने उनके नाम के साथ 'अरविन्द' जोड़ दिया। अब वे अभयचरण अरविन्द हो गये।

जब श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती इलाहाबाद से कलकत्ता चले गये, तब अभय को अपने आध्यात्मिक गुरु के स्थान पर कार्य करने के दायित्व का उत्सुकता से अनुभव होने लगा। दीक्षा के समय श्रील भक्तिसिद्धान्त ने उन्हें रूप गोस्वामी के *भक्ति-रसामृत-सिन्धु*

के अध्ययन का आदेश दिया था, जिसमें कृष्ण और भक्तों के बीच प्रेममय आदान-प्रदान का वर्णन था और जो बताता था कि कोई भक्त आध्यात्मिक जीवन में कैसे आगे बढ़ सकता है। *भक्ति-रसामृत-सिन्धु* भक्तों के लिए 'कानून की पुस्तक' के समान था और अभय को उसका अध्ययन ध्यानपूर्वक करना था। इलाहाबाद केन्द्र पर बारम्बार जाने और वहाँ नये लोगों को ले जाने में उन्हें प्रसन्नता होती। अपने आध्यात्मिक गुरु से जब वे प्रथम बार मिले थे, तब भी उन्हें भगवान् चैतन्य के मिशन के प्रचार का आदेश मिला था। अब वे नित्य ध्यानपूर्वक विचार करने लगे कि यह कार्य कैसे किया जाये। प्रचार करना उनके लिए कम से कम उतनी ही जिम्मेदारी का काम था, जितनी घर-गृहस्थी और धंधा चलाना। घर में भी वे जहाँ तक होता प्रचार में लगे रहना चाहते थे। लोगों को घर पर आमंत्रित करने, उनके साथ कृष्ण के विषय में चर्चा करने और प्रसाद बाँटने के सम्बन्ध में वे अपनी पत्नी के साथ योजनाएँ बनाते। पत्नी में उन जैसा उत्साह नहीं था।

श्रील प्रभुपाद : *मेरी पत्नी कृष्ण की भक्त थीं, लेकिन उनका विचार कुछ और था। उनका विचार था कि श्रीविग्रह की पूजा घर में की जाये और शान्तिपूर्वक रहा जाये। मेरा विचार प्रचार करने का था।*

• • •

अभय के लिए अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ यात्रा करना या उनसे प्रायः मिलना सम्भव नहीं था। अपने औषधालय के कार्य में वे व्यस्त रहते और उसके लिए उन्हें प्रायः यात्राएँ करनी पड़तीं। परन्तु जहाँ तक सम्भव होता, वे कलकत्ता की यात्रा की योजना तब बनाते, जब उनके आध्यात्मिक गुरु भी वहाँ होते। इस प्रकार अगले चार वर्षों में अपने आध्यात्मिक गुरु से शायद एक दर्जन बार मिलने के अवसर उन्होंने निकाले।

जब अभय कलकत्ता जाते तब गौड़ीय मठ के सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, नित्यानन्द ब्रह्मचारी, मठ की दो घोड़े वाली गाड़ी लेकर हावड़ा-रेल्वे स्टेशन पर उनसे मिलते। नित्यानन्द की दृष्टि में अभय एक असाधारण रूप से विनम्र और सहिष्णु व्यक्ति थे। जब वे दोनों गाड़ी में बैठकर मठ की ओर चलते, तब अभय श्रील भक्तिसिद्धान्त की ताजा गतिविधियों के विषय में जिज्ञासापूर्वक पूछते कि वे कहाँ-कहाँ गये, कौन-कौन सी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, कितने केन्द्र इस समय चल रहे हैं, उनके शिष्य कैसा कर रहे हैं, इत्यादि। अभय के कारोबार के सम्बन्ध में उनमें ज्यादा बातें न होतीं। अभय गौड़ीय मठ में आमतौर पर पाँच दिन रुकते। कभी-कभी वे अपनी एक बहिन के यहाँ चले जाते, जो कलकत्ता में रहती थीं, किन्तु कलकत्ता जाने के पीछे उनके लिए मुख्य कारण श्री भक्तिसिद्धान्त थे; और उनका प्रवचन सुनने के हर अवसर का वे लाभ उठाते।

गौड़ीय मठ की आन्तरिक व्यवस्था का नेतृत्व हाथ में लेने का प्रयत्न अभय ने नहीं किया। उनके आध्यात्मिक गुरु ने अठारह संन्यासियों को दीक्षित किया था, जो मिशन के प्रचार और नेतृत्व का अधिकतर भार वहन कर रहे थे। अभय सदा गृहस्थ थे, और अपने परिवार और धंधे में व्यस्त रहते थे, और वे यदा-कदा जाने के अतिरिक्त मठ में कभी नहीं रहे। इतना होने पर भी वे अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने लगे।

कभी-कभी अभय उनसे मिलने के लिए महाप्रभु चैतन्य की जन्मभूमि मायापुर में स्थित चैतन्य मठ जाया करते। एक दिन जब अभय चैतन्य मठ के आँगन में थे, तो एक बड़ा विषैला साँप सनसनाता हुआ उनके सामने से निकला। अभय ने अपने शिष्य-बन्धुओं को आवाज दी, लेकिन जब वे आये, तो उनमें से हर एक साँप को देखता खड़ा रहा। कोई तय न कर सका कि क्या करना चाहिए। श्रील भक्तिसिद्धान्त दूसरी मंजिल के बरामदे में निकले, उन्होंने नीचे निगाह डाली और साँप को देखा और तुरन्त आदेश दिया, "उसे मार डालो।" तब एक लड़के ने एक बड़ी लाठी से साँप को मार डाला।

श्रील प्रभुपाद : *मैं सोचने लगा, "गुरु महाराज ने साँप को मार डालने का आदेश क्यों दिया?" मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। लेकिन बाद में मैंने यह श्लोक देखा और तब मुझे खुशी हुई, "मोदेत साधुरपि वृश्चिक-सर्प हत्या"—साधु-पुरुष भी बिच्छू अथवा साँप को मारने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। मेरे मन में यह शक बना था कि गुरु महाराज ने साँप को मारने का आदेश क्यों दिया; लेकिन जब मैंने यह श्लोक पढ़ा, तो मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि साँप जैसे जीवों पर दया नहीं करनी चाहिए।*

श्रील भक्तिसिद्धान्त अपनी कठोरता के लिए इतने प्रसिद्ध थे और अन्य दर्शनों के विरुद्ध उनके तर्क इतने प्रबल थे कि यदि वे अकेले बैठे होते तो उनके अपने शिष्य भी, जब तक कोई खास काम न हो, उनके पास जाने में सावधान रहते थे। इतना होने पर भी अभय के प्रति वे दयालुता का व्यवहार करते, यद्यपि उनके साथ अभय का संसर्ग बहुत सीमित था।

श्रील प्रभुपाद : *मैं जब कभी भी अपने गुरु महाराज से मिलता, वे मेरे साथ बहुत प्रेम से व्यवहार करते। कभी-कभी मेरे शिष्य-बन्धु मेरी आलोचना करते, क्योंकि मैं गुरु महाराज के साथ जरा स्वतंत्रता से बात करता। मेरे शिष्य-बन्धु अँग्रेजी की इस कहावत का हवाला देते कि, "जहाँ देवता पग रखने से डरते हैं, वहाँ मूर्ख लोग सिर के बल कूद पड़ते हैं।" किन्तु मैं सोचता, "मूर्ख?" फिर अपने से कहता, "ठीक है, मान लो मैं वही हूँ।" मेरे गुरु महाराज मेरे प्रति सदा ही बहुत दयालु रहते। जब मैं उनके प्रति सम्मान प्रकट करता, तो वे बदले में हमेशा कहते, "दासोस्मि": "मैं तुम्हारा सेवक हूँ।"*

कभी-कभी जब श्रील भक्तिसिद्धान्त हरे कृष्ण मंत्र का सस्वर जप करते हुए और

माला फेरते हुए कमरे में आगे पीछे घूमते, तव अभय भी वहाँ चले जाते और अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ-साथ चलते हुए मंत्र का जप करने लगते। एक बार जब अभय कमरे में घुसे, तो उन्होंने देखा कि उनके आध्यात्मिक गुरु एक सोफे पर बैठे हैं। अभय उनके पास उतनी ही ऊँचाई पर बैठ गये। लेकिन तब उन्होंने देखा कि अन्य सभी शिष्य अपने आध्यात्मिक गुरु से नीचे स्तर पर उनके चरणों के पास बैठे हैं। अभय अपने स्थान पर बैठे रहे और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने उस विषय में कुछ नहीं कहा। लेकिन अभय अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ समान स्तर पर फिर कभी नहीं बैठे।

एक बार श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती अपने कई शिष्यों के साथ कमरे में बैठे प्रवचन कर रहे थे और अभय सुन रहे थे। तभी अभय की बगल में बैठे एक वृद्ध ने उनकी ओर कुछ इशारा किया। अभय उसकी ओर यह सुनने के लिए झुके कि वह क्या चाहता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त इन दोनों शिष्यों पर जो असावधान दिख रहे थे, कुपित होकर अचानक आवेश में आ गये और पहले उस वृद्ध को सम्बोधित करते हुए बोल पड़े, "बाबू, क्या आप समझते हैं कि एक सौ पचास रुपए प्रतिमास अनुदान देकर आपने मुझे खरीद लिया है?" और तब अभय की ओर मुड़कर वे कहने लगे, "तुम यहाँ आकर मेरी जगह क्यों नहीं बोलते।" अभय प्रत्यक्षत: जैसे चेतनाहीन हो गये, लेकिन फिर भी इस ताड़ना को निधि बना कर उन्होंने मन में रख लिया।

एक बार एकान्त में श्रील भक्तिसिद्धान्त ने अभय को समझाया कि बहुत जोरदार प्रचार में कितना खतरा है।

श्रील प्रभुपाद : *मेरे गुरु महाराज का योगदान यह है कि उन्होंने जातिवादी गोस्वामियों को हराया। उन्होंने ब्राह्मणवाद को हराया। उन्होंने इस कार्य को उसी प्रकार किया, जिस प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने किया था। जैसाकि चैतन्य महाप्रभु ने कहा है, किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय। ऐई कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता, सेई गुरु हय—"इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कोई ब्राह्मण है, संन्यासी है, शूद्र है या गृहस्थ है। नहीं, जो कोई कृष्ण-तत्त्व को जानता है वही सर्वज्ञ है, गोस्वामी है, ब्राह्मण है।"*

लेकिन चैतन्य महाप्रभु के बाद इसे किसी ने नहीं सिखाया। यह मेरे गुरु महाराज का योगदान था और इसी कारण उन्हें जातिवादी गोस्वामियों के ब्राह्मणों के इतने उग्र विरोध का सामना करना पड़ा।

एक बार उन्होंने गुरु महाराज को मार डालने का षड्यंत्र रचा—यह बात स्वयं गुरु महाराज ने मुझे बताई थी। जब हम एकान्त में मिलते तो वे कृपापूर्वक मुझे बहुत सी बातें बताते थे। वे मेरे प्रति इतने दयालु थे कि वे मुझसे बातें किया करते थे और उन्होंने मुझसे स्वयं कहा कि, "वे लोग मुझे मार डालना चाहते थे।"

उन्होंने पचीस हजार रुपए जमा किये और उस क्षेत्र के पुलिस अधिकारी को घूस देने के लिए उसके पास गये। "यह पचीस हजार रुपए आप लीजिए। हम भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के विरुद्ध कुछ करने जा रहे हैं। आप हमारे खिलाफ कोई कदम न उठाएँ।" पुलिस अधिकारी समझ गया कि वे लोग उन्हें मार डालना चाहते थे। वह सीधे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के पास गया और बोला, "यह सच है कि हम घूस लेते हैं और इस तरह के कामों में शरीक होते हैं, लेकिन एक साधु के लिए नहीं, एक संत के लिए नहीं। नहीं, मेरा साहस ऐसा करने का नहीं है।" इस तरह उस पुलिस अधिकारी ने इनकार कर दिया और उसने मेरे गुरु महाराज से कहा, "आप सावधान रहिए। स्थिति यही है।" ऐसा इसलिए हुआ कि गुरु महाराज जातिवादियों का बड़े जोर से विरोध करते थे।

किन्तु वे अपने शिष्यों में साहस पसन्द करते थे। अभय को एक अवसर का पता चला, जब श्रील भक्तिसिद्धान्त के एक शिष्य ने एक सार्वजनिक सभा में किसी अत्यन्त सम्मानित मायावादी भिक्षु की निर्भयतापूर्वक निन्दा की थी और उसे 'मूर्ख पुरोहित' कहा था। उनकी इस उक्ति के कारण सभा भंग हो गई थी और कुछ शिष्यों ने इसकी सूचना श्रील भक्तिसिद्धान्त को दी थी; उनका विचार था कि श्रील भक्तिसिद्धान्त इस बात से रुष्ट होंगे कि उनका एक शिष्य सभा-भंग होने का कारण बना। किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रसन्न हुए और बोले, "उसने ठीक किया।" वरन् यह सुनकर कि किसी ने समझौता कर लिया है, उन्हें अप्रसन्नता हुई।

श्रील प्रभुपाद : *जब मेरे गुरु महाराज उपस्थित होते, तो बड़े से बड़े विद्वानों को भी उनके नौसिखिए विद्यार्थियों से बात करने में डर लगता। मेरे गुरु महाराज, "जीवित विश्वकोश" कहे जाते थे। वे इतने विद्वान थे कि किसी से किसी भी विषय पर बात कर सकते थे। और समझौता करना उन्हें आता ही नहीं था। तथाकथित संत, अवतार, योगी—जो कोई भी झूठा था—वह मेरे गुरु महाराज का शत्रु था। उन्होंने समझौता कभी नहीं किया। कुछ शिष्य-बंधुओं ने शिकायत की कि यह प्रचार तो 'खंडनकारी तरीका' है और सफल नहीं होगा। लेकिन जिन्होंने उनकी आलोचना की, उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा।*

श्रील भक्तिसिद्धान्त 'सिंह गुरु' के नाम से विख्यात थे। यदि वे किसी ऐसे व्यक्ति को देखते, जिसके बारे में वे जानते थे कि वह निर्विशेषवादी मत का समर्थक है, तो वे उसे चुनौतीपूर्ण शब्दों में ललकारते हुए कहते, "अपने मायावादी दर्शन से लोगों को धोखा क्यों दे रहे हो?" वे अपने शिष्यों को प्रायः समझौता न करने का उपदेश देते। "किसी की चाटुकारी क्यों करते हो?" वे कहते, "तुम्हें बिना किसी चाटुकारिता के निरे सत्य का प्रतिपादन करना चाहिए। धन तो जैसे-तैसे आयेगा ही।"

श्रील भक्तिसिद्धान्त वैष्णव दर्शन पर जब कभी लिखते या बोलते, तो वे हमेशा दृढ़ रहते; उनके निष्कर्ष शास्त्र मतानुसार और तर्क प्रबल होते। लेकिन अभय कभी-कभी अपने आध्यात्मिक गुरु को शाश्वत शिक्षा की अभिव्यक्ति ऐसे अनूठे ढंग से करते सुनते, जिसे वे कभी नहीं भूल सकते थे। "भगवान् को देखने की कोशिश मत करो" श्रील भक्तिसिद्धान्त कहते, "किन्तु इस तरह से कर्म करो कि भगवान् तुम्हें देखें।"

श्रील भक्तिसिद्धान्त मन्दिरों के उन स्वामियों की निन्दा करते थे, जो श्रीविग्रह का दर्शन एक धंधे के रूप में जीविका कमाने के लिए कराते थे। वे कहते थे कि इससे सड़क का भंगी होना अधिक सम्मानजनक है। उन्होंने एक बंगाली उक्ति गढ़ डाली, "शालग्राम द्वारा बादाम-भंग" : पंडे-पुरोहित शालग्राम श्रीविग्रह से बादाम तोड़ने वाले पत्थर का काम ले रहे हैं। दूसरे शब्दों में, यदि कोई व्यक्ति भगवान् के शालग्राम रूप या अन्य किसी श्रीविग्रह का दर्शन धन कमाने के लिए करता है, तो वह श्रीविग्रह को भगवान् के रूप में नहीं देख रहा है, वरन् जीविका कमाने के लिए उसे पत्थर समझ रहा है।

अभय को राष्ट्रवादी नेता सुभाषचन्द्र बोस के साथ अपने आध्यात्मिक गुरु के व्यवहार को जानने का अवसर मिला था। सुभाषचन्द्र बोस स्काटिश चर्च कालेज में उनके साथी थे। बोस इस बात से चिन्ताकुल होकर श्रील भक्तिसिद्धान्त के पास आये थे कि वे धार्मिक जीवन के लिए युवकों की भरती कर रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : *सुभाषचन्द्र बोस मेरे गुरु महाराज के पास आये और बोले, "आपने कितने ही लोगों को पकड़ लिया है। राष्ट्र के लिए वे कुछ नहीं कर रहे हैं।" मेरे गुरु महाराज ने उत्तर दिया, "हाँ, राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए आपको अत्यन्त मजबूत लोगों की जरूरत है, लेकिन ये लोग बहुत कमजोर हैं। आप देख सकते हैं वे कितने दुर्बल हैं। इसलिए उन पर नजर मत डालो। उन्हें कुछ खाने दो और हरे कृष्ण का कीर्तन करने दो।" इस तरह उन्होंने बोस से अपने को दूर रखा।*

श्रील भक्तिसिद्धान्त कहा करते थे कि जब वह दिन आयेगा कि हाईकोर्ट के जज कृष्ण के भक्त बन जायँगे और वैष्णव तिलक माथे पर लगाएँगे, तब वे मानेंगे कि कृष्णभावनामृत के प्रसार का उद्देश्य सफल हो रहा है।

वे कहते थे कि ईसा मसीह शक्ति-आवेश अवतार थे—शक्ति से सम्पन्न भगवान् के अवतार। "यह अन्यथा कैसे हो सकता है?" वे कहते, "उन्होंने भगवान् के लिए हर वस्तु का बलिदान कर दिया।"

अपनी विद्वत्तापूर्ण भाषा में उन्होंने घोषणा की कि, "भौतिकतावादी आचरण का दिव्य स्वेच्छावादी शासन तक पहुँचना सम्भव नहीं।" लेकिन कभी-कभी अपने भाषणों में वे अपेक्षाकृत जनसामान्य की सरल भाषा का प्रयोग करते हुए कहते, "सांसारिक विद्वान जो

परम भगवान् को अपनी इन्द्रियों और बौद्धिक तर्क-वितर्क से समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, उस व्यक्ति के समान हैं, जो बोतल के मधु का स्वाद बोतल की बाहरी परत को चाटकर पाने का प्रयत्न कर रहा हो।" उनका कहना था कि धर्म के बिना दर्शन कोरा तर्क है; और बिना दर्शन के धर्म केवल भावुकता है, जो कभी-कभी उन्माद बन जाता है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त कहते थे कि सारा संसार केवल वंचकों और वंचितों का समाज है। वे उदाहरण देते थे कि दुश्चरित्र स्त्रियाँ प्रायः कुछ तीर्थ-स्थानों में साधुओं को फँसाने के विचार से जाती हैं, यह सोचकर कि उनसे संतान प्राप्त करना गौरवपूर्ण होगा और कामी पुरुष साधुओं की वेश-भूषा इन वंचक स्त्रियों द्वारा फुसलाए जाने की आशा से पहनते हैं। उनका निष्कर्ष था: मनुष्य का उद्देश्य इस भौतिक संसार को छोड़कर भगवान् के पास पहुँचना होना चाहिए, क्योंकि "यह भौतिक संसार भले मनुष्य के रहने योग्य नहीं है।"

अभय देखते कि जब कोई शिष्य अपने आध्यात्मिक गुरु से भविष्य की किसी चीज के बारे में पूछता, तो वे कभी ऐसा उत्तर न देते कि, "हाँ, यह होगा" या "हम ऐसा करने जा रहे हैं।" प्रत्युत वे कहते, "हाँ, श्री भगवान् कृष्ण की इच्छा हुई, तो ऐसा हो सकता है।" यद्यपि पहले अपनी युवावस्था में वे ज्योतिषी रह चुके थे और भविष्यवाणी किया करते थे, लेकिन बाद में उन्होंने वह छोड़ दिया।

श्रील भक्तिसिद्धान्त आजीवन ब्रह्मचारी रहे और स्त्रियों के संग से उन्हें सख्त परहेज था। एक बार अभय अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ बैठे थे। उसी समय एक अन्य शिष्य भी अपनी युवा स्त्री के साथ वहाँ उपस्थित था। युवती ने श्रील भक्तिसिद्धान्त से पूछा कि क्या मैं आप से एकान्त में बात कर सकती हूँ। उन्होंने कहा, "नहीं, जो कुछ कहना हो, तुम यहाँ ही कहो। मैं एकान्त में तुमसे नहीं मिल सकता।" अभय इससे बहुत प्रभावित हुए। श्रील भक्तिसिद्धान्त की अवस्था तब ६० वर्ष के लगभग थी और वह युवती उनकी पोती जैसी थी; तब भी किसी स्त्री से एकान्त में बात करना उन्हें स्वीकार नहीं था।

श्रील भक्तिसिद्धान्त अपने शिष्यों को संन्यासी बनाना पसन्द करते थे। लेकिन एक दिन उनके एक संन्यासी-शिष्य को उसकी स्त्री बलात् घसीटकर ले गई। श्रील भक्तिसिद्धान्त अश्रु बहाते हुए दुख प्रकट करने लगे कि वे उस शिष्य को बचाने में सफल नहीं हुए। तो भी वे कृष्णभावनामृत में डूबे हुए पारिवारिक जीवन के निन्दक नहीं थे। उनका कहना था : "स्त्री-सहवास मुझे सैकड़ों बार मंजूर है, यदि मुझे विश्वास हो जाये कि उससे कृष्णभावनामृत युक्त बच्चे उत्पन्न होंगे।"

वे ब्रह्मचारियों को गौड़ीय मठ की पत्रिका और पुस्तकें बेचने के लिए बाहर भेजते और यदि कोई ब्रह्मचारी केवल एक या दो प्रतियाँ ही बेच पाता, तब भी वे बहुत प्रसन्न होते और कहते, "तुम कितने अच्छे हो!" कोई लेख प्रकाशन योग्य है या नहीं, इसका

विचार करने के लिए वे इस बात की गणना करते कि कृष्ण या चैतन्य शब्द उसमें कितनी बार प्रयुक्त हुआ है। यदि ये पवित्र नाम उसमें पर्याप्त बार आये होते, तो वे कहते, "ठीक है, यह लेख छप सकता है।"

वे बंगाली में कहते, "प्राण आछे यार, से हेतु प्रचार," अर्थात् जीवन प्रचार के लिए है—मृत मनुष्य प्रचार नहीं कर सकता। जब उनके कुछ प्रचारक, जो कीर्तन तथा प्रचार करने के लिए गये थे, बताते कि उनकी सभा में कोई नहीं आया, तो श्रील भक्तिसिद्धान्त उत्तर देते, "कोई हर्ज नहीं। चारों दीवारें तुम्हें सुनेंगी। यही पर्याप्त है। निराश न हो। कीर्तन करते जाओ।" और इस बात पर टिप्पणी करते हुए कि उनके कुछ शिष्य अलग हट गये हैं, उन्होंने कहा, "कुछ सैनिक तो मरेंगे ही।"

लेकिन वे नहीं चाहते थे कि उनके शिष्य आराम की जिन्दगी बिताएँ—एक बार एक शिष्य की आलोचना उन्होंने यह कहकर की थी कि वह आराम-पसन्द है। एकान्त में कठोर जीवन का अभ्यास भी उन्हें पसन्द नहीं था। अपना बनाया एक गीत वे गाया करते थे मन तुमि किसेर वैष्णव? "मेरे प्यारे मन, तुम किस तरह के वैष्णव हो? हरिदास ठाकुर और रूप गोस्वामी जैसे महान् संतों की नकल करते हुए तुम एकान्त में हरे कृष्ण गा रहे हो, लेकिन तुम्हारा ध्यान वास्तव में स्त्रियों और धन पर केन्द्रित है। तुम्हारे अन्दर कुवासनाएँ भरी हैं, इसलिए तुम्हारा भजन केवल प्रवंचना है।" वे शिक्षा देते थे कि यदि कोई भक्त नगर में प्रचार करने के स्थान पर एकान्त में चिन्तन करना चाहता है, तो वह महान् संतों की नकल करके लोगों को इस आशा में धोखा दे रहा है कि इससे उसे सस्ती प्रशंसा प्राप्त होगी। इसलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त किसी ऐसे स्थान में गौड़ीय मठ की शाखा नहीं खोलना चाहते थे, जो अच्छी तरह आबाद न हो।

अभय अपने आध्यात्मिक गुरु को हर अवसर पर सुनते रहते, परन्तु वे उनके सामने कोई दार्शनिक जिज्ञासा शायद ही कभी रखते। उन्हें केवल सुनना पसंन्द था।

श्रील प्रभुपाद : *मैं अपने आध्यात्मिक गुरु से कभी कोई प्रश्न न पूछता, अतिरिक्त इस प्रश्न के कि "मैं आपकी सेवा कैसे करूं?"*

• • •

औषध के कारोबार में अभय चरण दे विख्यात हो गये थे। बोस की लैबोरेटरी के लिए उन्होंने अच्छा काम किया था और दूसरी कम्पनियाँ भी उन्हें अपना एजेंट बनाना चाहने लगी थीं। अभय को धनाढ्य बनने की आशा थी।

श्रील प्रभुपाद : *मेरे गुरु महाराज ने आज्ञा दी, "तुम यह करो," पर मैंने सोचा कि पहले मैं धनाढ्य बन जाऊँ। तब मैं करूँगा। आरम्भ में मैं सोचता, "मेरे शिष्य बन्धुओं ने*

संन्यास ले लिया है। वे घर-घर भीख मांग रहे हैं। मैं भीख क्यों माँगू? पहले धन कमा लूँ, तब कृष्णभावनामृत का प्रचार आरम्भ करूँगा।"

भारत में दवाइयाँ बनाने की सबसे बड़ी कम्पनी 'बंगाल केमिकल' ने अभय से एक प्रस्ताव किया, किन्तु जब कम्पनी ने उनकी सभी शर्तों को नहीं माना, तब उन्होंने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, यद्यपि बाद में इसका उन्हें दुख हुआ। तो भी लक्षण अच्छे थे। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वे भारत के सबसे धनी व्यक्तियों में से एक होंगे और डॉ. कार्तिक बोस ने उनके ससुर से कहा था कि, "वे बहुत कुशाग्र बुद्धि व्यक्ति हैं।"

लेकिन दूसरे प्रकार के लक्षण भी थे। अपनी विस्तृत यात्राओं से उन्होंने बहुत से ग्राहक बना लिए थे, किन्तु बहुत भुगतान भी प्राप्त करने बाकी थे। बहुत-से ग्राहकों से भुगतान आने में देर होने लगी; उधर अभय पर कर्ज बढ़ने लगा; बोस लैबोरेटरी के दस हजार रुपये उन पर चढ़ गये। उनके शत्रु भी थे। जो व्यक्ति अभय के स्थान पर कलकत्ता में बोस लैबोरेटरी का मैनेजर बना था, वह डॉ. बोस को उनके खिलाफ भड़काने लगा। उसने बोस को भड़काया कि अभय बहुत अधिक स्वतंत्र हो गये हैं; उनके बारे में सुना गया है कि वे बंगाल केमिकल से वार्ता चला रहे हैं और जो इतना अधिक कर्ज उनके ऊपर हो गया है, उसका कारण नये मैनेजर के अनुसार प्रधान कार्यालय के प्रति उनमें स्वामिभक्ति का अभाव है। कार्तिक बोस का रुख अभय के प्रति अनुकूल बना रहा, लेकिन जब कर्ज के कारण उन्हें आर्थिक कठिनाई होने लगी, तो जाँच के लिए वे इलाहाबाद गये। प्रयाग फार्मेसी में उनकी बात डॉ. घोष से हुई जिन्होंने कहा कि "वे बहुत ईमानदार व्यक्ति हैं। उनका कोई दोष नहीं है। विश्वास करके उन्होंने ओषधि-विक्रेताओं को दवाइयाँ उधार पर दीं। लेकिन वे धन वसूल नहीं कर पा रहे हैं।"

डॉ. बोस बोले, "बहुत ठीक, लेकिन मैं उसे धन नहीं दे सकता। अभय ने कार्तिक बोस के साथ पूरा हिसाब किया और दोनों सहमत हुए कि मामले को निबटाने का सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि डॉ. बोस प्रयाग फार्मेसी और अभय का सारा हिसाब-किताब अपने हाथ में ले लें। इस तरह अभय कर्ज से तो मुक्त हो गये, लेकिन बेकार भी हो गये।

अतुलानन्द ब्रह्मचारी उनके पास गये और बोले, "आप मठ में क्यों नहीं आ जाते? अब तो आप स्वतंत्र हैं।" अभय निकटस्थ गोस्वामी मठ में और अधिक जाने लगे। गौड़ीय मठ के ब्रह्मचारियों ने उन्हें सुझाव दिया कि वे कृष्ण भगवान् पर पूर्ण रूप से निर्भर हो जाँए, संसार का त्याग कर दें, और उनके साथ पूरे समय के प्रचारक बन जाँए। लेकिन अभय के लिए कारोबार छोड़ने का कोई प्रश्न नहीं था। अगर वे ऐसा करें, तो उनकी पत्नी और बच्चों का क्या होगा? उनके और राधारानी के एक तीसरी संतान हो गई थी। वह लड़का था। इसलिए उनका आर्थिक दायित्व बढ़ रहा था। संसार को छोड़ देने की जो राय

ब्रह्मचारियों ने उन्हें दी, उसमें उनकी नियत अच्छी थी और उन्होंने जो स्वयं ऐसा किया था, वह उनके लिए बहुत अच्छा था, परन्तु अभय उनकी राय नहीं स्वीकार कर सकते थे।

बिना काम के वे कठिनाई में थे। लेकिन उनका विश्वास बना रहा और कोई नया रोजगार पाने के लिए वे आतुर थे। अन्य कंपनियाँ भी थीं, जो उन्हें अपना एजेंट बनाने को तैयार थीं। और उनके बहुत से पुराने ग्राहकों ने चाहा कि बोस का आदमी हुए बिना भी अभय उनके समायोजक हो जाँए। अभय ने अपनी निजी ओषधि-निर्माण-प्रयोगशाला खोलने पर विचार किया। अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि वे अपना निजी कारखाना खोलेंगे, लेकिन इलाहाबाद से कहीं बड़े शहर बम्बई में।

उन्होंने तय किया कि उनका परिवार इलाहाबाद में रहेगा और वे तथा उनके भाई बम्बई जायँगे, एक कमरा लेंगे और वहाँ एक कारखाना शुरू करने की सम्भावनाओं का सर्वेक्षण करेंगे। यद्यपि राधारानी अपने पति की यात्राओं की अभ्यस्त थीं, लेकिन उनकी कोई यात्रा इतने दिनों की नहीं थी, जितनी बम्बई की यात्रा होने की सम्भावना थी। अभय ने उनसे बात की और बताया कि उनके धंधे में हाल के नुकसान को श्रीकृष्ण का आयोजन मानना चाहिए। परिवार के भरण-पोषण के लिए उन्हें अब एक बड़ा धंधा आरम्भ करना होगा और वह बम्बई जैसे बड़े नगर में ही किया जा सकता है। लेकिन इलाहाबाद में पारिवारिक जीवन थोड़े समय के लिए भंग हो जायेगा। उन्होंने दवाएँ बनाने की एक बहुत छोटी इकाई इलाहाबाद में कायम करके अपने भांजे, तुलसी को उसका भार सौंप दिया और भाई के साथ वे बम्बई चले गये।

बम्बई में अभय ने ग्रांट रोड पर एक कमरा किराए पर लिया और बोस लैबोरेटरी के मैनेजर के रूप में उन्होंने जो जानकारी प्राप्त की थी, उसका उपयोग करते हुए दवाएँ बनाने का अपना एक निजी कारखाना स्थापित किया। धंधा अच्छा चल निकला था, जबकि स्मिथ इंस्टीट्यूट नाम की एक बड़ी कम्पनी ने अपने सेल्स एजेंट के रूप में उनकी सेवाएँ चाही। अभय ने वह स्वीकार कर लिया, यह सोचते हुए कि स्मिथ के एजेंट के रूप में वे पैसा कमा लेंगे और साथ ही अपने धंधे का भी विकास करेंगे। दवाएँ बनाने के धंधे से पैसा कमाने के बारे में उन्हें अपनी क्षमता पर विश्वास था।

धंधे के सिलसिले में बम्बई में यात्रा करते हुए अभय की भेंट गौड़ीय मठ के कुछ सदस्यों, भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, और भक्तिसारंग गोस्वामी से हुई। ये दोनों भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के वरिष्ठ संन्यासी शिष्य थे। अभय ने उन्हें सम्मानित गुरुभाई माना, जो धर्मशास्त्रों और वैष्णव-दर्शन के मर्मज्ञ थे। ऐसा लगा कि मानों अभय के भाग्य में था कि वे जहाँ भी जायँगे, उन्हें गुरुभाई मिलेंगे। उन्होंने और संन्यासियों ने इस प्रकार अचानक शहर में मिल जाने को शुभ माना। इलाहाबाद में मिले गौड़ीय मठ के सदस्यों की

भाँति ही इन प्रचारकों के पास भी कोई स्थायी केन्द्र नहीं था, लेकिन वे एक केन्द्र स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की ओर से वे घर-घर जाकर गौड़ीय मठ की बम्बई शाखा खोलने के लिए सहायक ढूँढ रहे थे।

अभय सहायता करना चाहते थे। अपने आध्यात्मिक गुरु की सेवा में एक साथी गुरुभाई होने के नाते वे अपनी सेवाएँ उन्हें अर्पित करने को प्रस्तुत थे। संन्यासी के रूप में वे दोनों अभय से ऊँची स्थिति में थे, लेकिन अपनी कुछ असहाय अवस्था में वे सहायता के लिए अभय का सहारा खोज रहे थे। वे प्राक्टर रोड पर एक छोटी सी जगह में ठहरे थे और महत्त्वपूर्ण लोगों से सम्पर्क बनाने का अवसर उन्हें नहीं मिला था। अब उन लोगों ने एक दल बनाया; अभय उनका परिचय कारोबारी लोगों से कराते और संन्यासी उनसे नये केन्द्र के लिए अनुदान लेते। अभयचरणारविन्द चंदा इकठ्ठा करने में दक्ष थे और उसके लिए स्वेच्छापूर्वक उन्होंने समय दिया। फिर, उनके साथी गुरुभाई उन पर जोर डालने लगे कि गौड़ीय मठ के प्रचार में वे पूरी तरह सम्मिलित हो जाँए।

श्रील प्रभुपाद : *हमने दान एकत्र करने के लिए एक दल बनाया, जिसमें श्रीधर महाराज, गोस्वामी महाराज और स्वयं मैं—तीन लोग थे। मैं उन्हें अपने कुछ दवा-विक्रेताओं और डाक्टर मित्रों के पास ले गया और दो दिन में हमने पाँच सौ रुपए इकठ्ठे किये। श्रीधर महाराज भाषण देते, मैं परिचय कराता और गोस्वामी महाराज दान माँगने के लिए आग्रह करते। इस तरह गोस्वामी महाराज बहुत सराहना करने लगे और वे मेरे बारे में ऊँची बातें करने लगे, "बाबू होकर वह बहुत दक्ष है; उसके इतने मित्र हैं और उसने इतना धन एकत्र कर लिया। हम उसे अपने मठ का कार्य-वाहक क्यों न बना दें? वह हमारे साथ क्यों नहीं रहता? वह अकेले क्यों रहता है?"*

अभय प्राक्टर रोड पर मठ का स्थान देखने गये। वहाँ भक्तों के साथ वे कीर्तन में सम्मिलित हुए और उन्होंने भागवत पर उनके भाषण सुने। संन्यासियों की प्रार्थना पर अभय ने अपने ऊपर यह जिम्मेदारी ली कि बम्बई-केन्द्र के लिए वे अधिक उपयुक्त जगह खोजेंगे। वे शहर में जहाँ भी जाते, सम्भव स्थानों की बात उनके ध्यान में रहती। जैसे इलाहाबाद में रहने वाली अपनी पत्नी और बच्चों के प्रति उनकी जिम्मेदारी थी, ठीक वैसे ही दीक्षा-ग्रहण करने के कारण अपने साथी गुरुभाइयों की सहायता करना उनका कर्तव्य था। न केवल धंधे की प्रतियोगिता में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए उन्हें संघर्ष करना था, वरन् उन्हें प्रचार में भी सम्मिलित होना था। लेकिन उनको लगता था कि वे संन्यासियों का जीवन कभी नहीं बिता सकेंगे, जिसमें अपनी कहने को कुछ चीजें न हों, कोई धंधा न हो, नंगे फर्श पर सोना पड़े, निरा सादा खाना खाना पड़े।

• • •

फरवरी २५, १९३५

उस दिन श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का बासठवाँ जन्मदिवस था। जगन्नाथपुरी में, जहाँ श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती निवास कर रहे थे, भक्तों ने उस दिवस को समारोहपूर्वक मनाया। बम्बई-केन्द्र में जो थोड़े से भक्त थे, उन्होंने संध्या को जल्सा किया और स्थानीय लोगों को उसमें आमंत्रित किया। उस अवसर के लिए अभय ने एक कविता लिखी :

नमस्कार करो, ओ लोगों नमस्कार करो
    उस शुभ दिन को,
जो स्वर्ग से भी मंगलमय है,
    मई से भी अधिक मधुर है,
जब वे प्रकट हुए
    पवित्र पुरी में,
मेरे स्वामी और गुरु
    कृष्णकृपामूर्ति।

ओह! मेरे गुरु
    सुख सम्वाद प्रचारक देवदूत,
हमें अपना प्रकाश दो,
    अपना दीप प्रज्ज्वलित करो।
अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हुई,
    मानव जाति।
एक मात्र आशा
    कृष्णकृपामूर्ति।

हम पथभ्रष्ट हैं,
    मार्ग से भटके हुए।
प्रभो, हमें बचा लो
    हमारी उत्कट प्रार्थना है।
विस्मयजनक हैं आपके ढंग
    हमें अपनी ओर उन्मुख करने हेतु।

प्रणाम करते हैं हम आपके चरणों को
हे कृष्णकृपामूर्ति।

भूल गये हैं कृष्ण को
हम पतित जीव,
इसीसे हम भर रहे हैं
माया का भारी कर।
चारों ओर अंधकार
सब असूझ,
आशा है केवल
कृष्णकृपामूर्ति।

सन्देश सेवा का
आप लाये हो।
स्वस्थ जीवन का
जैसा चैतन्य लाए थे।
सबको-अज्ञात
यह बन्धन-युक्त है।
यह आपकी भेंट है
हे कृष्णकृपामूर्ति।

परमेश्वर हैं इन्द्रियानुभूति से युक्त
सिद्ध किया है आपने,
निर्विशेष, निराकारवाद की विपत्ति का
निराकरण किया है आपने।
इससे पाया है जीवन
नया, स्फूर्तिमय हमने।
अर्चन करते हैं आपके चरणों का
हे कृष्णकृपामूर्ति।

यदि आप न आते
तो कौन बताता हमें
सन्देश कृष्ण का
शक्ति और साहस से भरा।
आपका अधिकार है यह।
दंड आपके हाथ है।
मुझ पतित का उद्धार किजीये,
हे कृष्णकृपामूर्ति।

सेवा का मार्ग
प्रशस्त आपके द्वारा
हर्षद और स्वस्थ है
प्रातः के नीहारबिन्दु की तरह।
सबसे प्राचीन
किन्तु नित्य नये परिधान में।
किया अद्भुत कर्म
हे कृष्णकृपामूर्ति।
—अभय चरण दास

अभय ने एक भाषण भी तैयार किया था, जिसे उन्होंने एकत्रित अतिथियों और गौड़ीय मठ के सदस्यों के सामने पढ़ा। यद्यपि उनकी मातृभाषा बंगाली थी, किन्तु उनकी अंग्रेजी स्पष्ट और सुबोध थी :

> सज्जनों, आचार्यदेव की अभ्यर्थना का जो आयोजन आज शाम यहाँ किया गया है, वह किसी शाखा-विशेष का नहीं है, क्योंकि जब हम गुरुदेव या आचार्यदेव के मूलभूत सिद्धान्त की बात करते हैं, तो यह सर्वव्यापी सिद्धान्त की बात होती है। इसमें मेरे गुरु, आपके गुरु या अन्य किसी के गुरु में भेद करने का प्रश्न नहीं उठता। गुरु केवल एक है जो मुझे, आपको और अन्यों को शिक्षा देने के लिए असंख्य रूपों में प्रकट होते हैं। गुरु या आचार्यदेव, जैसाकि प्रामाणिक धर्म शास्त्रों से हमें ज्ञात होता है, अद्वैत विश्व का सन्देश देते हैं; मेरा आशय परम पुरुष के उस दिव्य लोक से है, जहाँ हर वस्तु बिना किसी भेद-भाव के परम सत्य की सेवा में रत है।

कविता की तरह ही भाषण भी व्यक्तिगत था, लेकिन कविता से भी बढ़कर वह अधिकारपूर्ण, दार्शनिक प्रचार था। गुरुभाई अभय द्वारा वैष्णव दर्शन के ऐसे कौशलपूर्ण प्रस्तुतीकरण से बहुत प्रभावित हुए। यह कैसे सम्भव हुआ? उनके लिए यह कोई ऐसे आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए थी; अपने गुरुभाइयों की तरह ही अभय ने भी वैष्णव दर्शन के सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से सुना था। गीता, भागवत और भक्ति-रसामृत-सिन्धु का अध्ययन करने और अपने आध्यात्मिक गुरु को सुनने के बाद भला अभय उनकी शिक्षाओं का आख्यान करने में समर्थ क्यों न होते? क्या वे परम्परा के भक्त नहीं थे? लेकिन उस समय तक किसी को मालूम नहीं था कि वे अंग्रेजी में इतनी दक्षता से प्रचार कर सकते हैं।

> इसलिए यदि परम सत्य एक है, जिसके विषय में हम सोचते हैं कोई मत-भेद नहीं है, तो गुरु भी दो नहीं हो सकते। जिन आचार्यदेव की विनम्र अभ्यर्थना के लिए हम आज एकत्रित हुए हैं, वे किसी शाखागत संस्था के या सत्य की विभिन्न व्याख्या करने वाले बहुत से गुरुओं में से एक नहीं हैं। प्रत्युत वे जगद् गुरु हैं या हम सबके गुरु हैं। अन्तर केवल यह है कि कुछ पूरे तन-मन से उनकी आज्ञा मानते हैं जबकि दूसरे उनकी आज्ञा का प्रत्यक्ष पालन नहीं करते।

जिस गुरु के सम्बन्ध में अभय बोल रहे थे, निश्चय ही, वे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती थे—धर्मशास्त्रों के मूल संग्रहकर्ता व्यासदेव के प्रतिनिधि। अभय ने समझाया कि किस प्रकार श्रीकृष्ण ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को दिव्य ज्ञान दिया था। ब्रह्मा से वह ज्ञान नारद को मिला, नारद से व्यास को और व्यास से मध्व को...चूँकि श्रील भक्तिसिद्धान्त वैदिक ज्ञान को बिना किसी टीका-टिप्पणी के यथा-परम्परा प्रस्तुत कर रहे थे, इसलिए वे ही सच्चे गुरु थे, जो लोगों को वेदों के प्रामाणिक ज्ञान से लाभान्वित कर सकते थे।

अभय ने कहना जारी रखा:

> सज्जनों, हमारा ज्ञान इतना अधूरा है, हमारी इन्द्रियाँ इतनी अपूर्ण हैं, हमारे साधन इतने सीमित हैं कि हमारे लिए परम धाम का रंचमात्र भी ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है, जब तक कि हम श्री व्यासदेव या उनके सच्चे प्रनिनिधि के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित न कर दें।

अभय ने व्याख्या की कि भारत को इस दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हजारों वर्षों से है और

यह ज्ञान—यद्यपि इस समय वह धुंधला पड़ गया है—संसार को भारत की वास्तविक भेंट है।

> हमें निष्कर्ष निकालना पड़ेगा कि वर्तमान युग में जो अंधकार है, वह भौतिक उन्नति के अभाव के कारण नहीं है, वरन् इसलिए है कि हम अपनी आध्यात्मिक उन्नति का सूत्र खो बैठे हैं, जो मानव जीवन की प्रथम आवश्यकता और सर्वोच्च प्रकार की सभ्यता की कसौटी है। वायुयानों से बम गिराना उस आदिम अवस्था से उन्नत सभ्यता का द्योतक नहीं है, जिसमें पहाड़ों की चोटियों से शत्रुओं के सिरों पर बड़े-बड़े पत्थर बरसाए जाते थे। नई मशीनगनों और विषैली गैसों के आविष्कार से पड़ोसियों को मारने की कला में सुधार को हम उस आदिम बर्बरता से आगे की उन्नति नहीं कह सकते, जो धनुष-बाण से जान लेने की दक्षता पर गर्व करती थी। न ही पुष्ट स्वार्थपरता की भावना के विकास से बौद्धिक पशुता के अतिरिक्त और कुछ सिद्ध होता है...
>
> अत: जब अन्य लोग अभी तक ऐतिहासिक अनस्तित्व के पेट में थे, भारत के ऋषियों ने एक भिन्न प्रकार की सभ्यता का विकास किया, जो हमें स्वयं को जानने में समर्थ बनाती है। उन्होंने अन्वेषित किया कि हमारा अस्तित्व निरा भौतिक नहीं है, वरन् हम आध्यात्मिक, स्थायी और परम सत्ता के अविनश्वर सेवक हैं।

भाषण जारी रहा—दुर्नियोजित मानव जीवन के भयंकर परिणामों का और बार-बार के जन्म और मृत्यु के दुखों का वर्णन करते हुए। अभय ने आध्यात्मिक गुरु के सामने समर्पित होने की आवश्यकता पर बार-बार बल दिया। उन्होंने मिथ्याभाषी भौतिकतावादी दार्शनिकों, नास्तिक राजनीतिज्ञों और अंधे इन्द्रिय पोषकों की निन्दा की। बार-बार उन्होंने भगवान् के और भगवान् के सच्चे भक्तों के सेवक के रूप में आत्मा की स्वाभाविक और उत्कृष्ट स्थिति की ओर संकेत किया। अपने आध्यात्मिक गुरु के दो वर्ष पुराने दीक्षित शिष्य अभय ने अपनी ओर संकेत करते हुए कहा :

> सज्जनों, दिव्य ज्ञान के लिए यद्यपि हम लोग भोले बालकों की तरह हैं, तथापि कृष्णकृपामूर्ति मेरे गुरुदेव ने मिथ्या ज्ञान के अविजेय अधंकार को नष्ट करने के लिए हमारे अन्दर ज्ञान की चिनगारी प्रज्ज्वलित कर दी है, और हम इतने सुरक्षित हैं कि मायावादी विचारधारा के चाहे कितने भी दार्शनिक तर्क हों, वे हमें कृष्णकृपामूर्ति के चरणकमलों के शाश्वत आश्रय से रंचमात्र भी विचलित नहीं कर

सकते—और हम इस महत्त्वपूर्ण विषय में मायावादी विचार-धारा के बड़े-बड़े विद्वानों को चुनौती देने के लिए तैयार हैं कि श्री भगवान् और गोलोक में उनकी दिव्य लीलाएँ ही वेदों का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है।

तदन्तर उन्होंने आत्म-समर्पण की ओजमयी प्रार्थना के साथ अपने भाषण का समापन किया :

व्यक्तिगत रूप से मुझे कोई आशा नहीं है कि अपने जीवन के आगामी करोड़ों जन्मों में मैं श्री भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा का कोई अवसर पाऊँ, किन्तु मुझे विश्वास है कि किसी न किसी दिन उस माया के कीचड़ से मेरा उद्धार होगा, जिसमें इस समय मैं जकड़ा हुआ हूँ। अतएव सच्चे मन से मैं अपने देव-स्वरूप गुरु के चरणकमलों में निवेदन करता हूँ कि अपने पूर्व दुष्कृत्यों के लिए जो मेरा भोग्य है, उसे मुझे भोगने दिया जाये, किन्तु इस अनुभूति की मुझे शक्ति प्राप्त हो कि परम श्री भगवान् के एक तुच्छ सेवक के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं हूँ—उन परम श्री भगवान् के जिनकी प्राप्ति देवस्वरूप गुरुदेव की दृढ़ दया से ही सम्भव है। इसलिए अपनी समस्त विनम्रता के साथ मैं उनके चरणकमलों को नमन करता हूँ।

अपनी कविता और भाषण दोनों को उन्होंने *दि हारमोनिस्ट* में प्रकाशन के लिए दिया। उस पहली कविता के प्रकाशन से ही अंग्रेजी के सक्षम लेखक के रूप में उनका नाम हो गया। *दि हारमोनिस्ट* के सम्पादक स्वामी भक्तिप्रदीप तीर्थ ने उन्हें 'कवि' की उपाधि दी। अभय के कुछ गुरु भाइयों ने भी यह नाम पकड़ लिया और वे उन्हें 'कवि' कहने लगे। उनमें से अधिकतर, यहाँ तक कि संन्यासी भी, अंग्रेजी में उतने योग्य नहीं थे। किन्तु अभय कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे इस बात को सराह रहे थे कि कविता व्यक्तिगत थी, जो अभय द्वारा एक सच्चे गुरु की स्वीकृति और उनकी पूजा और तज्जन्य प्रसन्नता से उद्भूत थी। साथ ही धर्मशास्त्रों के निष्कर्षों का उसमें दृढता से व्यक्त किया गया था।

अभय को 'श्री व्यास-पूजा-अभिनन्दन' का वास्तविक गौरव उस समय मिला, जब उनकी कविता श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती तक पहुँची और उससे उन्हें प्रसन्नता हुई। उसके एक पद से श्रील भक्तिसिद्धान्त को इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने उसे सभी अतिथियों को दिखाया :

परमेश्वर हैं इन्द्रियानुभूति से युक्त,
सिद्ध किया है आपने।
निर्विशेष, निराकारवाद की विपत्ति का,
निराकरण किया है आपने॥

जो हो, इस सरल पद में अभय ने मायावादियों के विरुद्ध अपने आध्यात्मिक गुरु की शिक्षा का सारांश अभिव्यक्त किया और श्रील भक्तिसिद्धान्त के लिए यह एक संकेत था कि अभय अपने गुरुदेव की विचार-धारा को कितनी अच्छी तरह जान गये थे। अभय आह्लादित हो उठे, जब उन्होंने सुना कि कविता के इस पद से उनके आध्यात्मिक गुरु को प्रसन्नता हुई है। अभय के एक गुरुभाई ने अभय की इस कविता की तुलना रूप गोस्वामी की एक कविता से की, जिसमें उन्होंने भगवान् चैतन्य के उस आन्तरिक चिन्तन का वर्णन किया था, जिसके कारण वे भावातिरेक की दशा को प्राप्त हो गये थे।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को लेख भी बहुत पसन्द आया और उन्होंने उसे अपने कुछ विश्वस्त भक्तों को दिखाया। *दि हारमोनिस्ट* के सम्पादक को उन्होंने आदेश दिया, "वह जो कुछ लिखे, उसे प्रकाशित करो।"

• • •

अभय के विचार से यह स्वाभाविक था कि व्यवसाय में उनके बहुत से विरोधी या प्रतिद्वन्द्वी हों—यह सफलता का लक्षण था। किन्तु बम्बई की प्रतिद्वन्द्विता से उन्होंने धनाढ्य बनने का एक और अच्छा अवसर खो दिया। स्मिथ इंस्टीट्यूट में अभय के निरीक्षक का लड़का उनका 'शत्रु' बन गया। पिता और पुत्र दोनों ने स्मिथ इंस्टीट्यूट के अधिकारियों से शिकायत की कि अभय चरण दे स्मिथ लैबोरेटरी की वस्तुओं के स्थान पर अपनी निजी लैबोरेटरी की वस्तुओं के विक्रय को आगे बढ़ा रहे हैं। इस षड्यंत्र के कारण अभय स्मिथ इंस्टीट्यूट में अपना स्थान खो बैठे और उनके निरीक्षक ने अपने लड़के को उनके स्थान पर नया एजेंट बना दिया। अभय को फिर आत्म-निर्भर बनना पड़ा।

बम्बई में अपने साथी संन्यासी गुरुभाइयों की सहायता में लगे हुए अभय को गवालिया टैंक रोड पर एक दो-मंजिला मकान किराए पर प्राप्य था। हर एक सहमत था कि वह केन्द्र के लिए उपयुक्त था; अभय ने किराए की व्यवस्था की, मकान की मरम्मत कराई और संन्यासियों को उसमें ले जाकर बसाया। ऐसा लगता था कि अभय के सभी आध्यात्मिक प्रयत्न तो सफल हो जाते थे, किन्तु व्यावसायिक प्रयत्नों को बार-बार विफलता का मुँह देखना पड़ता था। व्यवसाय में कुछ विरोधियों का होना तो स्वाभाविक ही है, इससे निरुत्साहित होने की कोई बात नहीं थी—षड्यंत्र और हानि व्यवसाय के खेल

के अनिवार्य अंग हैं; ओषधि-निर्माण-व्यवसाय के क्षेत्र में अभय का नाम अभी भी देश-भर में विख्यात था। लेकिन व्यवसाय में लाभ-हानि का प्रश्न अभय को उतना परेशान नहीं कर रहा था, जितना उनका यह सन्देह कि इस व्यवसाय में बने रहना उनके लिए अपने आध्यात्मिक गुरु की सेवा का सर्वोत्तम मार्ग है या नहीं। व्यवसाय तभी अच्छा था यदि यह उनके आध्यात्मिक जीवन के साथ-साथ चल सके। भगवान् चैतन्य ने कहा था कि हरे कृष्ण-कीर्तन को हर गाँव और कस्बे में फैलाना चाहिए, और अभय उस भविष्यवाणी को पूरा करने में अपने आध्यात्मिक गुरु की सहायता करना चाहते थे, विशेषकर धन इकट्ठा करके और केन्द्रों की स्थापना करके। उनकी कमाई का सर्वांश उनके परिवार के पोषण में ही नहीं खर्च होना चाहिए था।

आदर्श तो यही होना चाहिए कि पारिवारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन साथ-साथ प्रगति करें। लेकिन कठिनाई अभय की पत्नी को लेकर थी। उन्हें व्यवसाय में हानि से चिन्ता होती और आध्यात्मिक सफलताओं के प्रति वे उदासीन थीं। वे घर और परिवार के घेरे में ही रहना चाहती थीं और अभय के सुझावों के बावजूद उन्होंने श्रील भक्तिसिद्धान्त से दीक्षा लेने से इनकार किया था। स्वयं अभय की पत्नी के रूप में उनका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी मौजूद था और प्रतिद्वन्द्विता का यह युद्ध उसने घर के अन्दर खड़ा किया था, जो और भी बुरा था।

अभय जब कभी अपने परिवार में इलाहाबाद जाते, तो वे अपने अच्छे इरादों से उन्हें सन्तुष्ट करने की कोशिश करते। बम्बई में व्यवसाय इतना अच्छा नहीं चल रहा था, लेकिन उनके पास नई योजनाएँ थीं और वे अपने परिवार को विश्वास दिलाते कि चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने योजना बनाई कि पत्नी को अधिक उपदेश दिया जाये, ताकि सारा परिवार आध्यात्मिक क्रिया-कलाप में अधिकाधिक लग सकें। वे चाहते थे कि अतिथियों को आमंत्रित किया जाये, *भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* पर चर्चाएँ हों, कीर्तन किया जाये और प्रसाद बाँटा जाये। वे अपने आध्यात्मिक गुरु और गुरुभाइयों की तरह प्रचार कार्य में प्रवृत्त होना चाहते थे। यह कार्यक्रम ऐसा नहीं था कि कोई संन्यासी या ब्रह्मचारी आकर उसकी अध्यक्षता करे। अभय स्वयं ही यह कर सकते थे। आदर्श परिवार का यह एक दृष्टान्त हो सकता था। लेकिन राधारानी उनके सामने झुकने को तैयार नहीं थीं। उनका उपदेश सुनने के लिए आने के स्थान पर वे बच्चों के साथ चाय पीती हुई दूसरे कमरे में बैठी रहतीं।

• • •

बम्बई में अभय श्रीधर महाराज और भक्ति-सारंग गोस्वामी के सम्पर्क में आये। ये

दोनों संन्यासी ऊँचे दर्जे के विद्वान थे। श्रीधर महाराज शास्त्रों में पारंगत होने के कारण सम्माननीय थे और भक्ति-सारंग गोस्वामी का नाम उनके अंग्रेजी में लिखने और भाषण देने के कारण था। कभी-कभी अभय अपनी अनुभूतियों के सम्बन्ध में उनसे विचार-विमर्श करते।

अभय ने अपने आप भी शास्त्रों का अध्ययन किया—जिनमें उनके आध्यात्मिक गुरु और पहले के आचार्यों द्वारा *गीता* और *श्रीमद्‌भागवत* पर लिखी गई टीकाएँ सम्मिलित थीं। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा *भगवद्‌गीता* (अध्याय २, श्लोक ४१) की टीका का अध्ययन करते हुए उन्होंने पढ़ा कि शिष्य के लिए उसके आध्यात्मिक गुरु का आदेश उसके प्राण और आत्मा सदृश है। इन शब्दों का अभय पर गहरा प्रभाव हुआ। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के आदेश के पालन की उनकी इच्छाशक्ति को इससे बड़ा बल मिला। और *श्रीमद्‌भागवत* के दसवे स्कन्ध के अठ्ठासीवें अध्याय में उन्हें एक ऐसा श्लोक मिला, जिसमें भगवान् कृष्ण की उक्ति से वे चमत्कृत हो उठे :

यस्याहम् अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्-धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःख-दुःखितम्॥

"जब मैं किसी पर अनुग्रह करता हूँ, तो धीरे-धीरे उसकी भौतिक-सम्पत्ति का हरण कर लेता हूँ। तब उसके स्वजन उसे दुख-दग्ध निर्धन मानव समझकर उसका परित्याग कर देते हैं।"

इस श्लोक को पढ़कर अभय काँप गये। यह मानो उन्हीं के लिए हो। लेकिन इसका आशय क्या था? "क्या इसका आशय यह है कि कृष्ण मेरी सारी सम्पत्ति ले लेंगे?" उन्होंने सोचा। उस समय क्या सचमुच यही हो रहा था? क्या इसीलिए व्यवसाय सम्बन्धी उनकी सारी योजनाएँ विफल हो रही थीं? उन्होंने श्लोक के अर्थ के विषय में श्रीधर महाराज से चर्चा की। श्रीधर महाराज ने पुष्टि की कि हाँ, जो कुछ हो रहा था, वह शायद भगवान् कृष्ण और उनके बीच बढ़ते सम्बन्ध का परिणाम था।

• • •

जुलाई १९३५ ई. में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती बम्बई केन्द्र में भगवान् कृष्ण के श्रीविग्रह की स्थापना और उनकी आराधना का समारंभ करने के लिए आये। उनके भक्तों ने तब तक जो कुछ किया था, उससे वे प्रसन्न हुए। भक्तिसारंग महाराज ने उनके सामने स्वीकार किया कि धन-संग्रह और नये केन्द्र की स्थापना के रूप में अधिकांश कार्य अभय बाबू का किया हुआ था। "अभय अलग क्यों रह रहे हैं?" भक्तिसारंग ने पूछा, "उन्हें इस बम्बई-केन्द्र का अध्यक्ष होना चाहिए।"

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने उत्तर दिया, "अच्छा ही है कि वे आपके दल से बाहर रह रहे हैं। समय आने पर वे सब कुछ स्वयं करेंगे। आपको उनकी संस्तुति करने की आवश्यकता नहीं है।"

जब यह वार्ता हुई, तब अभय मौजूद नहीं थे, लेकिन उनके गुरुभाइयों ने श्रील भक्तिसिद्धान्त ने जो कुछ कहा था, वह उन्हें बता दिया। अभय के आध्यात्मिक गुरु के ये शब्द उनके लिए महत्त्वपूर्ण थे, जिनमें रहस्यमय भविष्यवाणी की ध्वनि थी। उन शब्दों को उन्होंने अपने मन में संचित कर लिया और उनके अर्थ पर वे विचार करने लगे।

• • •

नवम्बर १९३५ ई. में अभय फिर अपने आध्यात्मिक गुरु के पास वृन्दावन पहुँचे। कार्तिक का महीना था, जो वृन्दावन के दर्शन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त महीना है। श्रील भक्तिसिद्धान्त अपने शिष्यों के साथ एक मास के लिए शान्त और पवित्र राधाकुण्ड के तट पर रह रहे थे, जहाँ राधा और कृष्ण क्रीड़ा किया करते थे।

जुलाई में बम्बई छोड़ने के बाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती कलकत्ता चले गये थे। वहाँ उन्होंने रेडियो पर भाषण दिया, बहुत से सार्वजनिक भाषण दिए, उन प्रचारकर्ताओं के लौटने का स्वागत किया, जिन्हें उन्होंने योरप भेजा था, और *श्रीमद्भागवत* के अनुवाद और टीका का प्रकाशन पूरा किया। तब अक्तूबर में वे राधाकुण्ड आये थे। वे भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा निर्मित छोटे से एक-मंजिले मकान में निवास करते हुए शिष्यों को उपदेश देने और उपनिषदों, *चैतन्यचरितामृत* और *श्रीमद्भागवत* के अध्ययन में लगे थे। श्री कुंज बिहारी मठ में उन्होंने श्रीविग्रहों की स्थापना भी की थी।

राधा-कुण्ड के तट प्राचीन इमली, तमाल और नीम की गांठदार शाखाओं की चमकदार हरी पत्तियों से आच्छादित थे। छिछले जल में सारस अपनी लम्बी टांगों पर चित्रवत् खड़े रहते थे, जबकि जलमुर्गाबियाँ कुंड में आर-पार चक्कर लगाया करती थीं और जब-तब मछली के लिए अचानक डुबकी मार देती थीं। कभी-कभी कोई कच्छप जल की गहराई से अपनी नाक ऊपर कर देता था या कोई मछली छलांग लगा देती थी। हरे रंग के तोते, प्राय: जोड़ों में, हरे-भरे वृक्षों के बाहर-भीतर उड़ते दिखाई देते थे और इधर उधर फुदकते हुए गौरैये चहचहाया करते थे। वहाँ मोर भी थे, जो अधिकतर निकटवर्ती बगीचों में रहते थे। कभी-कभी खरगोश और यहाँ तक कि हिरण भी आ जाते थे।

राधाकुण्ड का वातावरण कृष्ण-लीला के इतिहास से समृद्ध था। पाँच हजार वर्ष पहले राधा और कृष्ण ने यहाँ दिव्य लीलाएँ की थीं और केवल पाँच सौ वर्ष पहले भगवान्

चैतन्य ने इस राधाकुण्ड को फिर से खोज निकाला था। भगवान् चैतन्य के महान् अनुयायी, रघुनाथ दास गोस्वामी, यहाँ कई साल रहे थे। वे निरन्तर हरे कृष्ण का कीर्तन करते रहते और भगवान् चैतन्य महाप्रभु के क्रियाकलापों की चर्चा में लीन रहते थे। और यहीं पर एक भजन-कुटीर में कृष्णदास कविराज ने *चैतन्य चरितामृत* नाम से महाप्रभु चैतन्य की लीलाओं का वर्णन लिखा था, जिसमें भक्तिसिद्धान्त सरस्वती इतना आनन्द लेते थे। राधाकुण्ड के निवासियों में बहुत से बाबाजी लोग थे, जो छोटे-छोटे भजन-कुटीरों में रहते थे और हरे कृष्ण का कीर्तन करते हुए अपना समय व्यतीत करते थे।

अपने आध्यात्मिक गुरु के वृन्दावन में निवास के विषय में सुनकर अभय अपने पुत्र के साथ बम्बई से वहाँ पहुँचे थे—केवल उनके दर्शनों के लिए। श्रील भक्तिसिद्धान्त का दर्शन सदैव ही प्रसन्नता का अवसर था, फिर यह दर्शन वृन्दावन में प्राप्त हो रहा था, इसलिए उसमें और भी पूर्णता थी। अपने प्रिय मार्गदर्शक और मित्र से अभय का यह मिलन १९३२ ई. में वृन्दावन की परिक्रमा में हुई भेंट से भिन्न था। अब अभय कमरे के पिछले भाग में बैठे अज्ञात व्यक्ति नहीं थे। अब वे प्रामाणिक शिष्य थे, जिसको 'कवि' नाम मिल चुका था, जिसने प्रशंसनीय कविता और लेख की रचना की थी, जिसने ध्यान लगाकर गुरुवाणी सुनी थी और जिसके द्वारा इलाहाबाद मठ को सहायता मिली थी और बम्बई में मठ की स्थापना हो चुकी थी। इस बार अभय को अवसर मिल गया था कि वे एकान्त में अपने आध्यात्मिक गुरु से मिल सकें। गुरु को अभय के पुत्र के विषय में स्मरण था। उन्होंने उसे एक छोटी जैकेट भेंट में दी। और अब राधाकुंड के किनारे अकेले में साथ-साथ टहलते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त कभी अभय की ओर मुड़कर उनसे गोपनीय वार्ता करने लगते।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कहा कि उनके प्रमुख शिष्यों में कलकत्ता में कुछ लड़ाई-झगड़े हुए थे; वे इससे बहुत दुखी थे। वृन्दावन में उनके मन पर अभी भी वे बोझ बने हुए थे। उनके कुछ शिष्य आपस में इसलिए लड़ रहे थे कि कलकत्ता में गौड़ीय मठ के मुख्यालय में कौन किस कमरे में रहेगा और किन सुविधाओं का उपयोग करेगा। वे सभी शिष्य उसी मठ के सदस्य थे और मुख्यालय का उपयोग भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के निर्देशन में कृष्णभावनामृत के प्रचार के लिए था। ऐसा होने पर भी वे अपने आध्यात्मिक गुरु की उपस्थिति में भी लड़ रहे थे। ब्राह्मणों और वैष्णवों से अपेक्षा की जाती है कि वे जीवमात्र के प्रति ईर्ष्या-द्वेष से मुक्त होंगे, आपस में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या द्वेष का तो कहना ही क्या? यदि वे अभी आपस में लड़ रहे हैं, तो आध्यात्मिक गुरु के तिरोधान के बाद वे क्या करेंगे? अभय का इन मामलों से कोई सम्बन्ध न था और न उन्हें उनके बारे में विस्तृत जानकारी थी या इस बात का ज्ञान था कि उन में कौन-कौन लोग शामिल हैं।

लेकिन अपने आध्यात्मिक गुरु से उनके बारे में जानकर अभय भी दुखी हुए।

बहुत चिन्तित होकर श्रील भक्तिसिद्धान्त अभय से बोले, "आगुन ज्वालबे" आग लग जायेगी—एक दिन कलकत्ता के गौड़ीय मठ में आग लग जायेगी, और निजी हितों की वह आग फैल जायेगी और सब भस्म कर डालेगी। अभय सुनते रहे, लेकिन वे नहीं जानते थे कि करें क्या। श्रील भक्तिसिद्धान्त ने यह सिद्ध करने के लिए लम्बा और कड़ा संघर्ष किया था कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी भी जाति का हो, ब्राह्मण, संन्यासी या वैष्णव के दर्जे तक उठ सकता है। किन्तु यदि उनके अनुयायी अल्प धन या पद के लोभ में पड़कर प्रदूषित हो जाते हैं और इस प्रकार सारे परीक्षण और परिष्कार के बावजूद, अपने को निम्न वर्ण का सिद्ध करते हैं, तो उनका मिशन उच्छिन्न हो जायेगा। यदि धर्म के नाम पर वे आराम, पद और बड़प्पन में आसक्त हो जाते हैं, तो इसका आशय केवल यही हो सकता है कि वे अपने आध्यात्मिक गुरु की शिक्षाओं को ग्रहण करने में असफल रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : *उनका रोना था कि ये लोग मकान की ईंटों और पत्थरों के पीछे पागल थे। उन्होंने इसकी निन्दा की। वे बहुत अधिक दुखी थे।*

"जब हम एक किराए के मकान में रह रहे थे," श्रील भक्तिसिद्धान्त ने कहा, "उस समय यदि हम दो या तीन सौ रुपए भी इकट्ठे कर लेते, तो उल्टडंग में हम बहुत आराम से रह सकते थे। उस समय हम अधिक प्रसन्न होते। लेकिन चूँकि बाग बाजार में हमें यह संगमरमर का भवन मिला है, हमारे लोग आपस में झगड़ते हैं। इस कमरे में कौन रहेगा? उस कमरे में कौन रहेगा? इस कमरे का मालिक कौन बनेगा? हर एक अलग-अलग योजना बना रहा है। बहुत अच्छा होता कि दीवालों से संगमरमर निकालकर उनसे पैसे पैदा किये जाते। यदि मैं ऐसा कर सकता और पुस्तकें प्रकाशित करता तो वह बहुत अच्छा होता।"

अभय को लगा कि उनके आध्यात्मिक गुरु उनसे आपात् स्थिति में बात कर रहे हैं, मानो वे उनसे सहायता मांग रहे हों या घोर-संकट के निवारण के लिए आगाह कर रहे हों। लेकिन वे क्या कर सकते थे?

श्रील भक्तिसिद्धान्त ने तब सीधे अभय से कहा, "*आमार इच्छा छिल किछू बै कराना,* "मेरी इच्छा कुछ पुस्तकें छपाने की थी। यदि तुम्हें कभी भी धन मिले, किताबें छपवाना।" राधा-कुण्ड के किनारे खड़े हुए और अपने आध्यात्मिक गुरु को निहारते हुए अभय को लगा कि ये शब्द उनके अन्तर्मन में प्रविष्ट हो रहे हैं, "यदि तुम्हें कभी धन मिले, तो किताबें छपवाना।"

• • •

दिसम्बर १९३६

जगन्नाथपुरी में श्रील भक्तिसिद्धान्त का स्वास्थ्य खराब था। अभय बम्बई में थे, और वे अपने गुरु महाराज को पत्र लिखना चाहते थे। उन्होंने सोचा, "वे मुझ पर कुछ दयालु हैं; वे मेरी प्रार्थना समझ जायेंगे।" और वे लिखने लगे :

प्रिय गुरु महाराज,

आपके चरणकमलों में विनम्र प्रणाम स्वीकार हो। आपके पास बहुत से शिष्य हैं और मैं उनमें से एक हूँ, लेकिन वे आपकी प्रत्यक्ष सेवा कर रहे हैं। उनमें कुछ ब्रह्मचारी हैं, कुछ संन्यासी हैं, किन्तु मैं गृहस्थ हूँ। मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता। कभी-कभी मैं आर्थिक सहायता करता हूँ, जबकि मैं प्रत्यक्ष सेवा नहीं कर सकता। क्या कोई विशेष सेवा है, जो मैं कर सकता हूँ?

दो सप्ताह बाद अभय को उत्तर मिला :

मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम अंग्रेजी के माध्यम से हमारे विचारों और तर्कों को उन लोगों तक पहुँचा सकते हो, जो अन्य सदस्यों की भाषाओं से परिचित नहीं हैं।

इससे तुम्हारा भी भला होगा और श्रोताओं का भी।

मुझे पूरी आशा है कि यदि तुम भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं की नवीन धारणा का प्रवेश जन सामान्य में तथा दार्शनिकों और धर्मवेत्ताओं में करने के लिए मिशन की सेवा कर सको, तो तुम अपने आपको उच्च-कोटि का अँग्रेजी प्रचारक बना लोगे।

अभय को तुरन्त ज्ञात हो गया कि यह तो वही उपदेश है, जो १९२२ ई. की पहली भेंट में उन्होंने प्राप्त किया था। उन्होंने इसे उसकी पुष्टि माना। अब अपने जीवन के उद्देश्य के विषय में उनके मन में कोई सन्देह नहीं रह गया था। उनके आध्यात्मिक गुरु ने १९२२ में कलकत्ता में जो कुछ कहा था, वह कोई आकस्मिक उक्ति नहीं थी, न ही वह कोई आकस्मिक भेंट थी। उपदेश वही था, "अपने आपको अंग्रेजी में बहुत अच्छा प्रचारक बनाओ। इससे तुम्हारा भी भला होगा और तुम्हारे श्रोताओं का भी।"

• • •

श्रील भक्तिसिद्धान्त का १ जनवरी १९३७ को इस नश्वर संसार से तिरोधान हो गया। जीवन के अन्तिम दिन वे चैतन्य चरितामृत पढ़ने और माला जपने में बिता रहे थे। जब एक डॉक्टर उन्हें देखने आया था और उन्हें इंजेक्शन देना चाहता था, तब श्रील भक्तिसिद्धान्त ने विरोध किया था, "आप मुझे इस ढंग से तंग क्यों करते हैं ? केवल हरे कृष्ण कहो, बस।" शिष्यों के प्रति उनके अन्तिम शब्द ये थे :

> मेरा परामर्श है कि रूप और रघुनाथ (भगवान् चैतन्य के शिष्य) की शिक्षाओं का प्रचार पूरी शक्ति और सभी साधनों को लगाकर करो। हमारा अन्तिम लक्ष्य श्री रूप स्वामी और श्री रघुनाथ गोस्वामी के चरणकमलों की रज बन जाना है। तुम लोगों को अपने आध्यात्मिक गुरु के निर्देशन में एकसाथ मिलकर परम ज्ञान, परम भगवान् की सेवा में कार्य-रत होना चाहिए। इस भौतिक संसार में केवल भगवान् की सेवा के निमित्त तुमको बिना वाद-विवाद के येन-केन-प्रकारेण सभी संकटो के बावजूद जीवन-यापन करना चाहिए। सारी कठिनाइओं, आलोचनाओं और असुविधाओं के बावजूद परम भगवान् की सेवा का कार्य कभी मत छोड़ो। तुम इसलिए निराश मत होओ, क्योंकि संसार में अधिकतर लोग परम भगवान् की सेवा नहीं करते। तुम अपनी सेवा मत बन्द करो; यही तुम्हारा सर्वस्व है। दिव्य भगवान् के पवित्र नाम के श्रवण और कीर्तन से मुख मत मोड़ो। तुम हमेशा भगवान् के दिव्य नाम का कीर्तन एक वृक्ष के धैर्य और सहिष्णुता तथा एक तिनके की विनम्रता की भाँति करो... तुम लोगों में बहुत से सक्षम और योग्य कार्यकर्ता हैं। हमें और किसी चीज की अभिलाषा नहीं है।

अन्तिम दिनों में उनकी चेतना बनी रही और अन्त तक वे आदेश देते रहे। उन्होंने विशेष रूप से और स्पष्ट शब्दों में आदेश दिया कि उनके गौड़ीय मठ की व्यवस्था का भार एक द्वादश-सदस्यीय शासी मंडल पर हो, जिसे भक्तगण अपने में से चुनकर बना सकते हैं। अन्त में उन्होंने कहा, "जो उपस्थित हैं और जो अनुपस्थित हैं, उन सबको मेरा आशीर्वाद। स्मरण रहे कि हमारा एकमात्र कर्तव्य और धर्म परम भगवान् और उनके भक्तों की सेवा का प्रचार और प्रसार करना है।" जनवरी १ को पूर्वार्ध में ५ बजकर ३० मिनट पर उन्होंने अन्तिम सांस ली।

यह समाचार शीघ्र बम्बई में अभय के पास पहुँचा। तत्क्षण वे दुख से विलाप करने लगे।—उनके लिए अब अपने गुरु महाराज से प्रत्याशित भेंट का आनन्द जाता रहा; देवस्वरूप श्रील भक्तिसिद्धान्त के लम्बे प्रभावशाली रूप के केवल दर्शन के लिए व्यवसाय

के बहाने कलकत्ता या वृन्दावन की यात्राओं के भी अवसर समाप्त हो गये। अब वे कभी नहीं मिलेंगे, यह विचार ही अभय के लिए असह्य हो गया। दार्शनिक दृष्टि से अभय जानते थे कि दुख मनाने का कोई कारण नहीं है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का इस संसार में आगमन भगवान् चैतन्य के मिशन को पूरा करने के लिए था और अब जरूरत थी कि वे इस संसार को छोड़कर दूसरे में जायें, जहाँ उन्हें वैसे ही कार्य-कलाप में लगना था। इस दार्शनिक विचार से लैस होते हुए भी अभय अपने को अकेला अनुभव कर रहे थे। उनके दो महान् शुभचिन्तक जाते रहे थे—पहले उनके पिताजी और अब उनके आध्यात्मिक गुरु। लेकिन वे कृतज्ञ थे कि उनके आध्यात्मिक गुरु के निधन के केवल दो सप्ताह पूर्व अन्तिम आदेश के रूप में उन्हें उनकी विशेष कृपा प्राप्त हुई थी। अभय ने उनके पत्र को बार-बार पढ़ा—अब दूसरा पत्र तो आना नहीं था। घनिष्ठ बातें और मुलाकातें अब होनी नहीं थीं। लेकिन उनके इस विशेष पत्र के सहारे अभय भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के आदेश प्राप्त करते रहेंगे। पत्र ठीक समय पर प्राप्त हुआ था। दूसरे लोग जो कुछ भी कहें, अब अभय को निस्सन्देह रूप में मालूम हो गया था कि अपने आध्यात्मिक गुरु को प्रसन्न कैसे किया जा सकता है और कृष्ण से सम्बन्ध कैसे स्थिर रह सकता है। उनके आदेशों का पालन करते हुए अभय अपने सर्वाधिक प्रिय शुभेच्छु के तिरोधान से हुई हानि की अनुभूति पर विजय पा लेंगे।